

शुक्र पर्यन्त सात धातुएं पार्थिव हैं, ओज अन्तरिक्ष है, किन्तु मन दिव्य है। मन प्राण का रस है, इसीलिए वह प्राण से कई गुना अधिक गतिवाला है। इस प्रकार अन्न अथवा वाक् प्राण के माध्यम से मन में परिणत होता है। इसलिए मन को अन्नमय कहा गया है—*अन्नमयं हि सौम्य ! मनः (छान्दोग्योपनिषद् ५.४)*। इस अध्यात्मयज्ञ की प्रक्रिया में रस से लेकर मन पर्यन्त सबकी आहुति वैश्वानर अग्नि में होती है जिससे प्रत्येक पदार्थ रस और मल में विभक्त होता चला जाता है। स्पष्ट है कि यह प्रक्रिया भी अग्नि में आहुति रूप होने के कारण यज्ञ कहलायेगी।

### सकाम कर्म

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यज्ञ से हमारे मन की कामनायें पूरी होती हैं। प्रश्न होता है कि कामना की तो शास्त्रों में निन्दा है। फिर कामना की पूर्ति के साधक यज्ञ को श्रेष्ठ कैसे कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में मनु का कहना है कि कामात्मता प्रशस्त नहीं है, किन्तु संसार में अकामता भी देखने में नहीं आती अतः हमें अपनी कामनाओं को एक दिशा देनी होती है और वह दिशा यह है कि हम वेदज्ञान और वेद में प्रतिपादित कर्मयोग की कामना करें—

*कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।*

*काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ (मनुस्मृति २.२)*

वेदाधिगम का सम्बन्ध ज्ञानशक्ति से है। वैदिक कर्मयोग का सम्बन्ध क्रियाशक्ति से है। वेदज्ञान के बिना वैदिक कर्मयोग का भी पालन नहीं हो सकता, क्योंकि कर्म को ज्ञान ही दिशा देता है। इस दृष्टि से वेद को सब धर्मों का मूल कहा गया है—*वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनुस्मृति २-६)*। वैदिक कर्मयोग ही धर्म है। धर्म का अर्थ कर्तव्य है।

### कर्तव्य-बोध

कर्तव्य का प्रश्न न पशु-पक्षियों के लिए है, न असुर-देवों के लिए। यह प्रश्न केवल मनुष्य के लिए है। मनुष्य के सम्बन्ध में एक विशेषता की हमने पहले चर्चा की है। प्रकृति की दृष्टि से देव अपनी ऋद्धि-सिद्धि के कारण मनुष्य से आगे हैं, किन्तु गुणातीत पुरुष की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि में केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसके केन्द्र में आत्मा है और इसलिए जो प्रकृति से ऊपर उठ सकता है, वह सामर्थ्य देवों में भी नहीं है, पशु-पक्षियों की तो बात ही क्या है? इसी दृष्टि में मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है—*नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्*। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम चर्चा को आगे बढ़ाते हुए एक नये तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे।

समष्टि में जो सर्वज्ञ, हिरण्यगर्भ और विराट् है व्यष्टि में वही प्राज्ञ, तैजस और वैश्वानर है। इन तीनों का समूह आत्मा है। बुद्धि कारणशरीर है, मन सूक्ष्मशरीर है और शरीर को स्थूलशरीर कहते हैं। लौकिक दृष्टि से बुद्धि मुख्य है, इसलिए ब्राह्मण भी क्षत्रिय के अधीन हो जाता है। व्यष्टि पुरुष है। इन दोनों की समानता के कारण ही पुरुष को प्रजापति के निकटतम बताया गया है—*पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्टम्*। वस्तुस्थिति यह है कि पुरुष प्रजापति के समान तो है ही उसमें कुछ ऐसी

विशेषता भी है, जो ईश्वर में भी नहीं है। पुरुष में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेश हैं। वह कर्मफल भोगता है, उसमें अच्छे-बुरे संस्कार हैं। ईश्वर में न क्लेश हैं, न संस्कार। इसलिए ईश्वर में नैतिकता के लिए कोई अवकाश नहीं है। वहाँ कोई अन्तर्द्वन्द्व ही नहीं है जो नैतिकता की मूलभूत अपेक्षा है। पशु-पक्षी और देव-असुरों में क्लेश, कर्मफल और संस्कार हैं, किन्तु उनमें बुद्धि का वह सात्विक स्वरूप नहीं है, जिसे ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य और धर्म कहा जाता है। ये चार केवल मनुष्य में ही सम्भव हैं। इसलिए मनुष्य में ही ज्ञान का अविद्या से, ऐश्वर्य का अस्मिता से, राग-द्वेष का वैराग्य से तथा धर्म का अभिनिवेश से संघर्ष होता है। इस संघर्ष से ही कर्तव्य-मीमांसा का प्रश्न उत्पन्न होता है। ज्ञान अविद्या को दूर करता है या अविद्या ज्ञान को अभिभूत कर लेती है—यह विकल्प केवल मनुष्य को उपलब्ध है। पशु और देवों में जितनी अविद्या जिस रूप में है उसी रूप में रहती है। इसलिए वे जो कुछ करते हैं उसमें अन्यथा नहीं कर सकते। उनके जीवन का मार्ग बँधा-बँधाया है। मनुष्य बँधे-बँधाये मार्ग से हटकर चल सकता है। इसीलिए उसके जीवन में जो महती सम्भावना है वह देवयोनियों में भी नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों ने इस तथ्य के इस रूप में कि प्रजापति के आदेश का उल्लंघन न देव करते हैं, न पितर, न पशु, न असुर। केवल मनुष्य ही प्रजापति के भी आदेश का अतिक्रमण कर सकता है। इसका अभिप्राय यही है कि शेष सब योनियों के लिए एक ही बँधा-बँधाया मार्ग है, जो प्रकृति ने उनके लिए निर्धारित कर दिया, किन्तु मनुष्य के लिए कोई एक बँधा-बँधाया मार्ग निर्धारित इसलिए नहीं किया जा सकता कि वह अन्तर्द्वन्द्व में जीता है।

यह अन्तर्द्वन्द्व नैतिक है। ज्ञान से अविद्या का संघर्ष है। ऐश्वर्य से अस्मिता का संघर्ष है, क्योंकि ऐश्वर्य आत्मविकास है और अस्मिता संकोच है। विकास स्मित है, अस्मिता स्मित का अभाव है। अस्मिता के कारण मनुष्य अपने को अपूर्ण मानता है। ऐश्वर्य भूमा का भाव है। तीसरा संघर्ष राग-द्वेष से वैराग्य का है। चौथा संघर्ष अभिनिवेश से धर्म का है। यह चतुर्विध संघर्ष ही मनुष्य जीवन की कहानी है।

### वैदिक जीवनदृष्टि की सर्वाङ्गीणता

जन्म साधारण में यह धारणा प्रचलित हो जाना कि वैदिक कर्म बन्धन का कारण है और ज्ञान की अपेक्षा हेय है। वस्तुस्थिति यह है कि ज्ञान और कर्म के बीच यह विरोध उस खण्डित दृष्टि का परिणाम है जो आत्मा और शरीर को खण्ड खण्ड करके देखता है और उनमें से एक को ग्राह्य तथा दूसरों को हेय मानता है।

वैदिक जीवन दृष्टि की विशेषता है कि वह वेद न इहलौकिक की उपेक्षा करता है, न पारलौकिक की। उसकी दृष्टि से न शरीर उपेक्षणीय है, न आत्मा। वैदिक दृष्टि ठोस धरातल पर उतनी ही दृढ़ता से खड़ी है जितने लाघव से आकाश में ऊँची उड़ान ले सकती है। वैदिक जीवन दृष्टि की ऐसी सर्वव्यापकता का आधार है—समग्र दृष्टि। वेद जीवन को अखण्ड मानते हैं। उसे शरीर और आत्मा, लोक और परलोक से तोड़कर नहीं देखते। हम अब तक ही यही प्रतिपादित करते रहे हैं कि विश्व, विश्वचर और विश्वातीत में मौलिक भेद नहीं है। एक ही तत्त्व अपने क्षर,

अक्षर और अव्यय रूप में तीनों में ओतप्रोत है। आधिदैविक स्तर पर अग्नि, वायु और आदित्य एक ही तत्त्व के घन, तरल और विरल रूप हैं, आधिभौतिक स्तर पर एक ही विश्व अधोभाग, मध्य भाग और ऊर्ध्वभाग की दृष्टि से पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौं बन गया है तथा अध्यात्म के क्षेत्र में शरीर, मन और बुद्धि एक ही प्रकृति के तीन गुण सत्त्व, रजस्व और तमस्व की परिणति है। वाक्, प्राण और मन का परस्पर अविनाभावसम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में कर्म और ज्ञान के बीच जो विरोध परवर्ती चिन्तकों ने दिखाए का प्रयत्न किया, उसके लिए वैदिक जीवन दृष्टि में कोई स्थान नहीं है। यजुर्वेद की तो स्पष्ट घोषणा है कि जो कर्म और ज्ञान की साथ-साथ उपासना करता है, वह कर्म द्वारा मृत्यु को पारकर के, ज्ञान द्वारा अमृतत्व को प्राप्त करता है। वैदिक जीवनदृष्टि में मृत्यु और अमृत अन्योन्याश्रित हैं। अमृत का अर्थ है स्थिरता, मृत्यु का अर्थ है परिवर्तनशीलता। इन्हें ही रस और बल भी कहते हैं।

खण्ड-खण्ड करके देखने वाली दृष्टि जड़ और चेतन में मौलिक अन्तर मानती है, किन्तु वेद की अखण्डतापरक समग्र दृष्टि से जड़ और चेतन में क्रमशः इन्द्रियों के व्यक्त न होने तथा इन्द्रियों के व्यक्त होने का भेद है, मौलिक भेद नहीं है। परवर्ती दर्शन में एक भेद पुरुष और प्रकृति के बीच किया गया है, किन्तु वैदिक दृष्टि भूत को भी क्षर-ब्रह्म कहकर प्रकृति और पुरुष के बीच कोई भौतिक भेद नहीं करती। ईश्वर और जीव के बीच भी कोई मौलिक भेद वैदिक दृष्टि में नहीं है। इस मूलभूत एकता को ही वेद ब्रह्म कहता है।

### पुरुषार्थचतुष्टय

व्यक्तित्व के चार अङ्ग—शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा है। उनसे जुड़े चार पुरुषार्थ हैं—अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। इस चतुष्टय की अपेक्षा से जीवन दृष्टि के भी चार ही पक्ष हो जाते हैं। प्रथम पक्ष शारीरिक है, जिसे जीवन का बाह्यपक्ष कहा जा सकता है। जिसे हम भौतिकवाद कहते हैं उसका सम्बन्ध मुख्यतः इसी पक्ष से है। प्रत्यक्षवादी के लिये यह पक्ष प्रमुख है। जो राजनीति के क्षेत्र में धर्म-निरपेक्षता की बात करते हैं तो उनका अभिप्राय यह होता है कि राजनीति को धर्म से कुछ लेना देना नहीं है, क्योंकि उनकी दृष्टि में धर्म आन्तरिक जीवन से जुड़ा हुआ है और राजनीति आन्तरिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। यह दृष्टि जीवन को खण्ड खण्ड करके देखने की दृष्टि है। वस्तुस्थिति यह है कि जीवन अखण्ड है, इसलिये बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन जैसे दोनों एक दूसरे से नितान्त असम्बद्ध खण्ड नहीं हैं, प्रत्युत दोनों में एक दूसरे से जुड़ा रहने का भाव है।

जीवन का दूसरा पक्ष काम पुरुषार्थ है, जिसका सम्बन्ध मन से है। शरीर की अपेक्षा मन सूक्ष्म है, आन्तरिक है, किन्तु बुद्धि की अपेक्षा मन स्थूल है, बाह्य है। इसलिये मन शरीर और बुद्धि के मध्य में है। अर्थ हमारे जीवन की अपेक्षाओं को पूरा करता है। काम हमारे मन को तृप्त करता है। काम भी प्रत्यक्ष जीवन का ही अङ्ग है। इसलिये इसे भी हम भौतिक पक्ष के अन्तर्गत ले सकते हैं।

बुद्धि जीवन दृष्टि का तीसरा पक्ष है। यह बुद्धि विवेक द्वारा शरीर और मन को नियंत्रित

करती है। यह नियंत्रित करने का कार्य ही धर्म कहलाता है। यदि धर्म का अंकुश न हो तो अनियंत्रित अर्थ और काम अव्यवस्था का कारण बनते हैं। इसीलिये धर्म को समाज का धारक माना जाता है। अर्थ और काम हमारे स्वार्थ पर टिके हैं। बुद्धि हमें यह विवेक देती है कि हमें अपने स्वार्थ के अतिरिक्त दूसरों के स्वार्थ का भी ध्यान रखना है।

शरीर, मन और बुद्धि तीनों ही एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म होने पर भी हमारे प्रत्यक्ष जीवन से ही जुड़े हैं। इसलिये कोई ऐसी संस्कृति नहीं है, जो अर्थ, काम और धर्म पर विचार न करे। साम्यवाद जैसी विचारधारा भी यद्यपि अपने आपको धर्म-निरपेक्ष करती है, किन्तु वह वस्तुतः धर्म की विवेचना पर ही टिकी है। साम्यवादी जब शोषण का विरोध करता है, धन के समान वितरण की बात करता है, भोग को नियंत्रित करने की बात करता है, तो वह धर्म की बात कर रहा है। जिस अर्थ में साम्यवादी धर्म को नकारता है, धर्म का वह अर्थ भले ही पश्चिम मानता हो, भारत नहीं मानता। हमारे लिये धर्म परलोक का ही विषय नहीं है, इस लोक का भी विषय है। इसलिये अर्थ, काम और धर्म तीनों का एक अलग वर्ग है, जिसे त्रिवर्ग कहा जाता है।

### परमपुरुषार्थ

यह त्रिवर्ग पुरुष के जीवन की समग्रता नहीं है, उसके लिये चौथा पुरुषार्थ मोक्ष भी आवश्यक है। जहां धर्म, अर्थ और काम गुणमयी प्रकृति के क्षेत्र हैं, वहां मोक्ष गुणातीत अध्यात्म का क्षेत्र है। इसलिये अर्थ, काम और धर्म को हम वस्तुतः पुरुषार्थ न कह कर प्रकृत्यर्थ कहते हैं। वास्तविक पुरुषार्थ तो मोक्ष ही है। जब त्रिवर्ग को भी पुरुषार्थ शब्द से कहा जाता है तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि प्रकृति की साधना भी आत्मा की प्राप्ति का ही साधन है इसलिये साधन के रूप में त्रिवर्ग भी पुरुषार्थ है, किन्तु साध्य तो मोक्ष ही है। इसलिये मोक्ष को परमपुरुषार्थ कहा जाता है।

### वर्णाश्रमचतुष्टयी

उपर्युक्त चार पुरुषार्थों के साथ ही चार आश्रम जुड़े हैं। श्रम वाक् का धर्म है। वाक् में शरीर और मन दोनों शामिल हैं क्योंकि दोनों का निर्माण अन्न से होता है। आश्रम मन और शरीर के साथ आत्मा को भी लेकर चलता है और इस प्रकार आश्रम में श्रम समाविष्ट है, किन्तु श्रम मात्र ही आश्रम नहीं है, आश्रम श्रम के माध्यम से आत्मा तक पहुंचने की सीढ़ी है। अर्थ पुरुषार्थ के अर्जन के योग्य शरीर की शक्ति, मन का संयम तथा बुद्धि का विकास ब्रह्मचर्य आश्रम में होता है। मन की तीन कामनाएं हैं—लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा। इन तीनों की तृप्ति गृहस्थाश्रम में होती है। मर्यादित इच्छाओं की पूर्ति के अनन्तर वानप्रस्थ आश्रम में मुख्यतः धर्म की साधना की जाती है। धर्म की साधना का अर्थ है—विवेक का जागरण। इस विवेक की चरम सीमा है—आत्मोपलब्धि, जो अन्तिम आश्रम सन्यासाश्रम में सिद्ध होती है। सभी आश्रमों में सभी पुरुषार्थों की साधना की जाती है, किन्तु मुख्यता की अपेक्षा हम एक एक पुरुषार्थ को एक एक आश्रम से जोड़ सकते हैं।

इसी प्रकार मुख्यता की अपेक्षा एक-एक पुरुषार्थ को एक-एक वर्ण से भी जोड़ा जा सकता

है। शूद्र वर्ण शारीरिक श्रम द्वारा अर्थ की सृष्टि से राष्ट्र को समृद्ध करता है। आर्थिक समृद्धि शारीरिक श्रम के ही आधीन है। अधिक उत्पादन का अर्थ है अधिक श्रम। साम्यवादी व्यवस्था श्रमिक को सर्वोपरि मानती है क्योंकि साम्यवादी व्यवस्था में आर्थिक समृद्धि ही सर्वोपरि है।

अर्थ का उपार्जन होने के बाद उसका उपयुक्त वितरण व्यापारी अर्थात् वैश्य करता है। उसी से हमारे काम पुरुषार्थ की तृप्ति होती है। जो मन की पटुता से उत्पादन को बाजार में बेच सकता है, वह वस्तुतः उत्पादन करने वाले श्रमिक से अधिक समृद्ध होता है। उसका कारण यह है कि उसके पुरुषार्थ का आधार शरीर का श्रम नहीं, अपितु मन की पटुता है। जिस प्रकार शरीर से मन सूक्ष्म है और बलवत्तर है, उसी प्रकार अर्थ की अपेक्षा काम सूक्ष्म है और बलवत्तर है। समाज की कामनाओं को केन्द्र में रखने वाला वैश्य अर्थ का उत्पादन करने वाले शूद्र से अधिक शक्तिशाली होता है। बुद्धि द्वारा विवेक पूर्वक अर्थ और काम पर सामञ्जस्य पूर्ण नियन्त्रण करने का काम प्रशासक का है। यही क्षत्रिय वर्ण है। शूद्र और वैश्य इसकी आधीनता स्वीकार करते हैं, क्योंकि यह उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है। आन्तरिक दृष्टि से न्याय की स्थापना करके समाज को विशुद्धित होने से बचाना तथा बाह्य आक्रमण से राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करना क्षत्रिय का धर्म है। यह रक्षा करता है इसलिए वर्म अर्थात् कवच कहलाता है। शास्त्र की आज्ञानुसार क्षत्रियों को अपने-अपने नाम के आगे वर्मा लिखना चाहिये। वैश्य उनके द्वारा सुरक्षित होता है, इसलिए वह अपने नाम के आगे गुप्त लगाता है।

चरम पुरुषार्थ मोक्ष है। यह ब्रह्मज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण है, इसलिए ब्राह्मण का मुख्य धर्म मोक्ष है। क्षत्रिय बाह्य खतरों से रक्षा करता है, इसलिए वह वर्मा अर्थात् कवच है। ब्राह्मण आन्तरिक खतरों से रक्षा करता है, इसलिये वह शर्म अर्थात् चर्म है। कवच बाहर से होने वाले आक्रमणों से हमें बचाता है, जबकि चर्म हमारे शरीर में रहने वाले मांस मज्जा, रक्तादि को बिखरने से रोक कर हमें विशीर्ण नहीं होने देता। क्षत्रिय अपना धर्म शास्त्र द्वारा सम्पादित करता है, ब्राह्मण शास्त्र द्वारा।

इस प्रकार चार वर्ण, चार आश्रम तथा चार पुरुषार्थ द्वारा हमारा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास करके हमें सर्वाङ्गीण बनाते हैं।

वैदिक साहित्य में जीवन दृष्टि की यह चतुर्मुखता चार वेदों से जोड़ी गयी है। संस्कृति का आर्थिक तथा शारीरिक अभ्युदयपक्ष मूर्त्तपक्ष है। समस्त मूर्त्त ऋग्वेद से उत्पन्न हुआ है, इसलिए मूर्त्तपक्ष ऋग्वेद है। ऋग्वेद का देवता अग्नि है। अग्नि ऊर्जा है। उसके बिना कोई श्रम या कर्म सम्भव नहीं है। हमारे शरीर का स्वाभाविक झुकाव विश्राम की ओर होता है। इस प्रवृत्ति का कारण तमोगुण है। यह तमोगुण शरीर को निकम्मा बनाता है और अर्थ के उत्पादन में बाधक होता है। कोई व्यक्ति या समाज बिना श्रमशीलता और कर्मठता के आगे नहीं बढ़ सकते। इस कर्मठता और श्रमशीलता का मूल ऊर्जा है, जिसे आधिदैविक क्षेत्र में अग्नि कहा जाता है, अध्यात्म के क्षेत्र में यही वाणी है। आधिभौतिक क्षेत्र में इसे देश कहते हैं, क्योंकि देश ही श्रम और कर्म का आधार है।

संस्कृति के मूर्त्तपक्ष का वैदिक साहित्य में एक संश्लिष्ट विवरण है। ऋक् से मूर्ति उत्पन्न होती है—*ऋग्भ्यो जाता सर्वशो मूर्त्तिमाहुः (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/१/१)* । स्वयं ऋक् अग्नि से उत्पन्न होता है—*सोऽग्नेरेवर्चः - (शांङ्ख्यायन ब्राह्मण ६/१०)* । इधर ऋचा का वाक् से सम्बन्ध है—*ऋचं वाचं प्रपद्ये (यजुर्वेद ३६/१)* । अग्नि का सम्बन्ध शरीर से भी है—*तनूपा अग्नेऽसि (यजुर्वेद ३/१७)* और सम्पन्नता से भी—*अग्निना रयिमश्नवत् (ऋग्वेद १/१/३)* । सारे कर्म और श्रम का आधारभूमि है और वास्तविक भूमिपुत्र शूद्र है इसलिए दोनों की उत्पत्ति पुरुषसूक्त में पाँव से बतायी है—*पद्भ्यां भूमि (ऋग्वेद १०/१०/१२) पद्भ्यां शूद्रः (ऋग्वेद १०/१०/१४)* । समाज के समस्त मूर्त्त अभ्युदय का मूल श्रम है। ब्रह्मचारी अपने श्रम और तप से समस्त लोकों को तृप्त करता है—*ब्रह्मचारी श्रमेण लोकास्तपसा पिपर्त्ति (अथर्ववेद ११/५/४)* । शूद्र का निर्माण भी तपस्या के लिए हुआ है—*तपसे शूद्रम् (यजुर्वेद ३०/५)* ।

यहां दो बात ध्यान देने योग्य है—वैदिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मचारी किसी भी वर्ण का क्यों न हो, श्रमपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। उसे राजसी ठाठ बाठ की अनुमति नहीं है। शूद्र का जीवन भी श्रमपूर्ण है। इस दृष्टि से दोनो समकक्ष हैं। जो ब्रह्मचारी शारीरिक श्रम में ही रम जाता है, वह शारीरिक श्रम को अपनी आजीविका का साधन बना लेता है। यह प्रथम आश्रम है। जब ब्रह्मचारी तपस्या से मुँह मोड़ लेता है तब समाज समृद्ध नहीं हो पाता। कर्मठता और श्रमशीलता मानों समाजपुरुष के पाँव हैं। जैसे हमारे पूरे शरीर के भार को पाँव सम्भालता है उसी प्रकार समाज श्रम पर टिका है।

संस्कृति का दूसरा पक्ष मानसिक पटुता का है। यह मानसिक पटुता ही उपासना कहलाती है। तमोगुण को अभिभूत करके कर्मठता आती है। शरीर का शत्रु तमोगुण है, तो मन का शत्रु रजोगुण है। रजोगुण को उपासना द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है। रजोगुण के नियन्त्रित करने का अर्थ गतिहीनता नहीं है, गतिहीनता तो तमोगुण है। उपासना मन को उच्छृङ्खलता से बचाकर रचनात्मक गतिशीलता प्रदान करती है। यह गतिशीलता जहां एक ओर व्यापार को जन्म देती है, वहीं दूसरी ओर दान की प्रवृत्ति के द्वारा भी धन का वितरण करती है।

गति का सम्बन्ध यजुः से है *सर्वा गति र्यजुषी हैव सृष्टम् (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/१/१)* । यजुः का सम्बन्ध एक ओर वायु से है—*वायोर्यजुषि (शाङ्ख्यायन ब्राह्मण ६/१०)* । दूसरी ओर मन से—*मनो यजुः प्रपद्ये (यजुर्वेद ३६/१)* । यह मन ही गृहस्थ के रथ के पहिये की धुरी है—*मनोऽस्या अन आसीत् (ऋग्वेद १०/५८/१०)* । गृहस्थों में भी वैश्य व्यापार द्वारा सर्वाधिक धनोपार्जन करता है—*इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि धनदा अस्तु मह्यम् (अथर्ववेद ३/१५/१)* । इसके लिए उसे दिशाओं में भ्रमण करना होता है—

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्वावापृथिवी सञ्चरन्ति ।

ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रौत्वा धनमाहराणि ॥

(अथर्ववेद ३/१५/२)

इस प्रकार संस्कृति का दूसरा अङ्ग उपासना द्वारा वायु की सी गति वाले मन को नियन्त्रित

करके एक ओर व्यापार से तथा दूसरी ओर दान से पदार्थों का वितरण करता है ।

ये अर्थ और काम समाज की आवश्यकता पूरी करते हैं, किन्तु धर्म के नियन्त्रण के बिना अर्थ और काम अनियन्त्रित होकर समाज में अव्यवस्था फैलाते हैं, इसलिए वस्तुतः समाज को धारण धर्म ही करता है । धर्म का यह व्रत धारण करने वाला वर्ण क्षत्रिय है—*धृतव्रताः क्षत्रियाः* (ऋग्वेद १०/६६/८३) ।

एतदर्थ क्षत्रिय को तेज धारण करना पड़ता है । यह तेज सामवेद से जुड़ा है—*सर्वं तेजः सामरूप्यं हैव शाश्वत् (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/९/१)* । साम का सम्बन्ध आदित्य से है—*आदित्यात् सामानि (शाङ्खायन ब्राह्मण ६/१०)* आदित्य का सम्बन्ध प्राण से भी है—*साम प्राणं प्रपद्ये (यजुर्वेद ३६/१)* । आदित्य काल का जनक है इसलिए काल को परमतेज कहा जाता है—*तस्मात् वै नान्यत् परमस्ति तेजः (अथर्ववेद १९/५३/४)* । एक ओर क्षत्रिय का तेज समाज की रक्षा करता है, दूसरी वानप्रस्थ का तप समाज को विशृङ्खलित होने से बचाता है । यह वानप्रस्थ तप के कारण अनाधृष्य है—*तपसा ये अनाधृष्या (ऋग्वेद १०/१४६/१)* । ज्ञान इन वानप्रस्थियों का मुख्य साधन है । इस प्रकार वानप्रस्थ और क्षत्रिय मिलकर समाज के अर्थ और काम को धर्म द्वारा अनुशासित करते हैं । इसके विपरीत यदि धर्म और काम धर्म और मोक्ष पर हावी हो जावें तो समाज विशृङ्खलित, राष्ट्र असुरक्षित और व्यक्ति उच्छृङ्खल हो जाता है ।

संस्कृति के उपर्युक्त तीन पक्ष ऋक्, यजुः और साम से जुड़े हैं । यह त्रयी है । इसमें ब्रह्मवेद अथर्ववेद समाविष्ट नहीं हैं । इस त्रयी की अपनी एक अलग कोटि है, क्योंकि ये तीनों इन्द्रिय, मन और बुद्धि के गोचर पक्ष का निरूपण करते हैं । इसे ही उपनिषद् में अपरा विद्या कहा गया है । आज की भाषा में उसे विज्ञान कह सकते हैं । शरीर से जुड़ी चिकित्सा आदि विद्याएं हो या पदार्थ से जुड़े भौतिक विज्ञान हो, मन से जुड़ा मनोविज्ञान हो या बुद्धि से जुड़ा तर्कशास्त्र, ये सभी अपरा विद्या के अङ्ग हैं ।

संस्कृति का चतुर्थ पाद पराविद्या से जुड़ा है । अपरा का विषय दिक्देशकालावच्छिन्न है परा का विषय दिक्देशकालानवच्छिन्न है । एक वाणी, मन और बुद्धि का विषय है, दूसरा अवाङ्मनस्-अगोचर है । एक विज्ञान है, दूसरा ज्ञान है । एक बल है दूसरा रस । दोनों का मिथुनीभाव है, मिथ्यात्व है । मिथ्यात्व का अर्थ अलीक नहीं है । जगत् मिथ्या इस अर्थ में है कि उसमें रस और बल के मिथुन का भाव है । ऊपर हमने विज्ञान पक्ष का उल्लेख किया, जिसके तीन विवर्त हैं—शरीर, मन और बुद्धि । इनके तीन देवता हैं—अग्नि, वायु और आदित्य । ये अग्नि, वायु और आदित्य वस्तुतः अग्नि के ही तीन रूप हैं, अतः इन तीनों को ही अग्नि मानें तो दूसरा देवता 'सोम' ज्ञान पक्ष का अधिष्ठाता कहलायेगा । विज्ञान का अधिष्ठाता अग्नि और ज्ञान का अधिष्ठाता सोम मिलकर ही जगत् को पूर्ण बनाते हैं ।

सोम का सम्बन्ध अथर्ववेद से है । अथर्ववेद ब्रह्मवेद है । ब्रह्म में सब देवताओं का समावेश है ।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ (यजुर्वेद ३२/१)

यह ब्रह्म समस्त सृष्टि का जनक है। सर्व हेतु ब्रह्मणा हैव सृष्टम् - तै.ब्रा. ३/१२/१/१। जो इस ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है। ब्राह्मणा स ब्रह्म कर्णवन्तः - ऋग्वेद ७/१०३/८। आत्मा का उपासक यह ब्राह्मण बुद्धि केन्द्रित क्षत्रिय के नियन्त्रण से भी ऊपर है, इसलिए सोम ही उसका राजा है—सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा (यजुर्वेद ३६/१)। यह सोम अमृत तत्त्व का प्रतीक है। अपां सोमममृता अभूम (ऋग्वेद ८/४८/३)। यह अमृत तत्त्व ही रस है जिसमें कहीं कोई न्यूनता नहीं है। रसेन तृप्तो न कुतश्चनो नः (अथर्ववेद -१०/८/८४)। इसलिए ब्रह्मवित् को त्यागपूर्वक ही भोग उचित है। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः (यजुर्वेद -४०/१)। त्यागपूर्वक यह भोग ही यज्ञ है। यही पुरुष का रूप है—पुरुषो यज्ञः (शतपथ ब्राह्मण ११/१/६/३६)। यह आत्मतत्त्व दिक्कालाद्यवच्छिन्न है। त्वं हि विश्वतो मुखं विश्वतः परिभूरसि (यजुर्वेद-३२/४)। त्रिगुणों से आवृत यह नवद्वार देह मृत्यु के पाश से आबद्ध है। पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणभिरावृतम् (अथर्ववेद १०/८/४३)। जो आत्मतत्त्व को जानता है, वही मृत्यु के भय से मुक्त होता है। तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः (अथर्ववेद १०/८/४४)।



## पञ्चम अध्याय

### देवताधिकरण

वैदिक साहित्य का विश्लेषण करने वाली कृतियों में बाहुल्येन देवों का ही विवरण रहता है। मैकडॉनल्ड जैसे विद्वान् वैदिक माइथोलॉजी जैसे ग्रन्थ में वैदिक देवों का विस्तृत परिचय देते हैं। देवों के इस परिचय में वे वैदिक संहिताओं में दिये गये विवरण का ही सङ्क्षेप करते हैं। किस देव का कैसा आकार है? कैसे वस्त्राभूषण हैं? कैसे वाहन तथा अस्त्र-शस्त्र हैं? यही वर्णन विशेष रूप से रहता है।

#### देव : सौर प्राण

ब्राह्मण ग्रन्थों में देवों का विश्लेषण इस दृष्टि से किया गया कि देव प्राण हैं। ऋषि प्राण स्वयम्भू में रहते हैं, पितृ प्राण परमेष्ठी में रहते हैं, तो देव प्राण सौर प्राण हैं। इसी प्रकार चन्द्रमण्डल में गन्धर्व प्राण हैं तथा पृथ्वी मण्डल में असुर प्राण हैं। इसलिये मनु ने कहा कि ऋषियों से पितर और पितरों से देव उत्पन्न हुए तथा देवों से समस्त जगत्—*ऋषिभ्यः पितरो जाता पितृभ्यो देवदानवाः । देवेभ्यश्च जगत्सर्वम् ।*

#### देव और देवता

प्राण के रूप में यदि ऋषि प्राण बारह हैं, पितृ प्राण सात हैं गन्धर्व प्राण सत्ताईस हैं और असुर प्राण निन्यानवें हैं तो देव प्राण तैंतीस हैं। ये सभी प्राण देवता कहलाते हैं। देवता शब्द व्यापक है और इससे सभी प्राणों का बोध होता है जो प्राण जिस स्थान का या कर्म का अधिष्ठाता होता है वही उस स्थान अथवा कर्म का देवता कहलाता है। इस प्रकार से ऋषि, पितर और असुर भी देवता तो हैं, किन्तु देव शब्द का प्रयोग केवल सौर प्राणों के लिए होता है। देव प्राण हो या अन्य देवता प्राण, वे सब पूरे विश्व में भी व्याप्त हैं और प्रत्येक पिण्ड में भी व्याप्त हैं। *जायमानो वै जायते सर्वाभ्यः एताभ्य एव देवताभ्यः*। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की इस समानता के कारण यह कहा जाता है—*यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे* इस तथ्य को प्रकट करने वाले और भी अनेक वाक्य है—*यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह, “योऽसौ सोऽहम्” इत्यादि*। देवता प्राणों के अतिरिक्त पाँच

पशु प्राण हैं, जिन्हें प्रवर्ग्य प्राण कहा जाता है। प्रवर्ग्य का अर्थ है-बचा हुआ। अभिप्राय यह है कि प्राण का जो अङ्ग देवताओं के निर्माण में लगने के बाद बचता है, उससे पशुओं का निर्माण होता है। प्राण से ही सत्ता सत्तावान् बनती है, इसलिए प्राण के बिना कुछ भी नहीं है। प्राण का विषय सूक्ष्म है इसलिये प्राणों के नाम कभी-कभी नाम भ्रामक हो सकते हैं। उदाहरणतः बृहस्पति देव का भी नाम है, पितर का भी है और ऋषि का भी। यहाँ तीन अलग-अलग प्राण समझने चाहिये। केवल उनके नाम में समानता है। इन्द्र जैसे देवता जब स्वयं बोलते हैं तो उनकी ऋषि संज्ञा हो जाती है।

## देवताओं की संख्या

प्राणों का नाम देवता है और प्राणों का विभाजन अनेक प्रकार से होता है, इसलिए देवताओं का भी विभाजन अनेक प्रकार से होता है। जब हम एक देवता की चर्चा करते हैं तो उसका अर्थ प्राण है, दो देवता कहने पर प्राण और अन्न समझना चाहिये, तीन देवता अग्नि, वायु और आदित्य हैं। अग्नि पृथ्वीस्थानीय है, वायु या इन्द्र अन्तरिक्षस्थानीय, सूर्य द्यु-स्थानीय। ये सभी प्राण हैं, इनमें अग्नि का कार्य पदार्थ को दृष्टिगोचर बना देना है। इन्द्र का कर्म बल है और आदित्य का काम प्रह्वयता है। अन्तरिक्ष में इन्द्र का कार्य विद्युत् आदि कभी-कभी ही दिखाई देता है, इसलिये विकल्प में सदा जिसका कार्य दिखायी देता है उस वायु को अन्तरिक्ष देवता मान लिया। इनके भेद करने पर ३३ देवता हो जाते हैं—आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र और प्रजापति।

*अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात्सोमो रुद्रेभिरभिरक्षतु त्मना ।*

*इन्द्रो मरुदिभर्ऋतुथा कृणोत्वादित्यैर्नो वरुणः शर्म संयत् ॥*

—आश्वलायनश्रौत सूत्र-२/११

इस प्रकार कुल मिलाकर तैंतीस देवता हो जाते हैं—इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च । मनोर्देवा यज्ञियासः ।—ऋग्वेद ८/३०/२ ।

## यज्ञ तथा देवता

देवताओं का सम्बन्ध यज्ञ से है, किन्तु यज्ञ-विज्ञान ब्रह्म-विज्ञान पर टिका है और ब्रह्म-विज्ञान आत्म-विज्ञान पर। इस प्रकार प्रजापति के तीन विवर्त हो जाते हैं—आत्मा, ब्रह्म और यज्ञ। आत्मा विश्वातीत है, शब्दातीत है, यह उपनिषद् का मुख्य विषय है। इस आत्मतत्त्व पर ब्रह्मविज्ञान टिका है। ब्रह्म मौलिक तत्त्व है। यह संहिता भाग का मुख्य विषय है। ब्रह्म विज्ञान पर यज्ञ विज्ञान टिका है। ब्रह्म यदि मौलिक तत्त्व है तो यज्ञ यौगिक तत्त्व है और वह ब्राह्मणग्रन्थों का मुख्य विषय है। ब्रह्म मूल है, यज्ञ तूल है। इस प्रकार संहिता भाग में जिन देवों का उल्लेख है उन्हें ब्राह्मणग्रन्थों की सहायता से ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है।

## क्या देव पुरुषविध हैं ?

एक जिज्ञासा यह होती है कि ये देव किस प्रकार के हैं ? क्या इनका पुरुषों जैसा आकार है अथवा इनका आकार पुरुषों जैसा नहीं है ? यास्काचार्य ने निरुक्त में इस विषय का विस्तृत

विवेचन किया है। उनका कहना है कि कुछ लोग देवताओं को पुरुष के समान ही समझते हैं। ऐसा मानने वालों की युक्ति यह है कि वेद देवताओं की स्तुति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार पुरुषों की स्तुति की जाती है। वेद में देवताओं के संवाद प्राप्त होते हैं। देवताओं के अश्व, रथ आदि उपकरण बताये गये हैं तथा उनका भोजन आदि करना भी कहा गया है। इस मत के विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि वेदों में यह सब बातें तो वनस्पति, पत्थर आदि ऐसे पदार्थों के सम्बन्ध में भी कही गयी हैं जो स्पष्टतः पुरुष के आकार के नहीं हैं। उदाहरणतः औषधियों से कहा गया है कि हे औषधियों। आप रक्षा करें। औषधे त्रायस्व। इसी प्रकार छुरे से कहा गया है कि इसे मारो मत। स्वधिते मैं हिंसीः। पत्थरों से कहा जाता है कि पत्थरों सुनो—शृणोतः प्रावाणः। स्पष्ट है कि औषधि, छुरे या पत्थरों का आकार पुरुष जैसा नहीं होता। अतः यह कहना कि देव पुरुषाकार हैं, पूर्णतः ठीक नहीं। यही नहीं, वेद में नदियों के भी रथ बताये गये हैं—सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनम्—ऋग्वेद संहिता ८/३/८४। क्या इस आधार पर हम नदी को पुरुष के समान मान लेंगे? वेद में यह भी कहा गया है कि पत्थर बोलते हैं—एते वदन्ति शतवत् सहस्रवत् इस आधार पर पत्थरों को पुरुष के समान नहीं माना जा सकता। इन दोनों प्रकार के विचारों के बीच यास्क का कहना है कि देवता दोनों प्रकार के हैं—पुरुष रूप भी और अपुरुष रूप भी।

### देवताओं के आठ प्रकार

पण्डित मोतीलाल जी शास्त्री ने इस समस्या का समाधान यह कह कर किया कि देवता ८ प्रकार के बताये गये हैं, जिनमें कुछ पुरुषविध हैं, कुछ पुरुषविध नहीं हैं—

१. पुरुषविध चेतन अनित्य मनुष्यदेवता—प्रत्यक्ष
२. पुरुषविध चेतन नित्य-चान्द्रदेवता—अप्रत्यक्ष
३. अपुरुषविध अचेतन नित्य सौर प्राणदेवता—अप्रत्यक्ष
४. अपुरुषविध अचेतन भूतमय देवता—प्रत्यक्ष
५. अभिमानी देवता—अप्रत्यक्ष
६. मन्त्रदेवता—अप्रत्यक्ष
७. आत्मदेवता—स्वानुभवैकगम्य
८. कर्मदेवता—कर्मसाक्षी

पहले कहा जा चुका है कि इन आठों में देव शब्द तृतीय स्थान पर परिगणित सौर प्राणों के लिये ही प्रयोग में आता है। ये सौर प्राण रूप रस गन्ध, शब्द और स्पर्श से रहित हैं तथा अधामच्छद हैं अर्थात् स्थान नहीं रोकते। ये सौर प्राण नित्य हैं। सूर्य पिण्ड इन्हीं के आधार पर प्रतिष्ठित है।

### तैत्तीस देव

स्वयम्भू प्राण नित्य है। इसी का स्थानान्तरण अन्य प्राणों में होता है। इसलिये सभी प्राण नित्य हैं। इसीलिये देवों को भी अजर-अमर कहा जाता है। इन प्राणों का इन्द्रियों से ग्रहण नहीं

हो सकता, क्योंकि इनमें रूप-रस-गन्ध-स्पर्श तथा शब्द नहीं है। इन प्राणों की तीन अवस्थाएं हैं घन अवस्था अग्नि है, तरल अवस्था वायु है और विरल अवस्था आदित्य है। इन तीनों के बीच में दो सन्धि प्राण हैं। इस प्रकार पाँच प्राण हो जाते हैं। इन पाँच प्राणों में भी अग्नि प्राण ८ हैं—१-ध्रुव, २-धर, ३-सोम, ४-आपः, ५-वायु, ६-अग्नि, ७-प्रत्यूष, ८-प्रभास। एकादश रुद्रों के नाम हैं—१-गार्हपत्याग्नि, २-आहवनीयाग्नि, ३-विभु, ४-वहि, ५-प्रचेता, ६-विश्ववेदा, ७-कवि, ८-बम्भारि, ९-दुवस्वानु, १०-शुन्ध्यु, ११-नैर्ऋत्याग्नि। आदित्य के १२ प्रकार हैं—१-इन्द्र, २-धाता, ३-भग, ४-पूषा, ५-मित्र, ६-वरुण, ७-अर्यमा, ८-अंशु, ९-विवस्वान, १०-स्पष्टा, ११-सविता, १२-विष्णु। इनमें अग्नि सम्बन्धी ८ देवता वसु कहलाते हैं।

इन (८ वसु + ११ रुद्र + १२ आदित्य =) ३१ देवताओं के अतिरिक्त २ देवता और हैं। वसु और रुद्र के मध्य एक देवता है तथा रुद्र और आदित्य के बीच दूसरा देवता है। इन देवताओं को नासत्य तथा दस्र कहा जाता है। इन्हीं का नाम अश्विनी कुमार है। यदि ये दो न हों तो वसु, रुद्र आदित्य का स्वरूप अपने में प्रतिष्ठित न रहे। इसलिये अश्विनी कुमारों को देवताओं का वैद्य कहा जाता है। जिन दो मनुष्य वैद्यों में अश्विनी प्राण की प्रधानता थी वे भी अश्विनीकुमार कहलाये। उन्होंने ही सुकन्या के पति महर्षि च्यवन को च्यवनप्राश देकर युवावस्था प्रदान की थी। इन दो देवताओं के स्थान पर कुछ लोग प्रजापति और वषट्कार को तथा कुछ लोग इन्द्र तथा वषट्कार को मानते हैं। यह ध्यान रखना चाहिये कि देवताओं की ३३ कोटियाँ हैं, न कि ३३ करोड़ देवता हैं। जिस प्रकार प्राण असङ्ख्य हैं। उस प्रकार देवता भी असङ्ख्य कहे जाते हैं। यजुर्वेद रुद्र को असङ्ख्य बतलाता है—असङ्ख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से देवताओं की ३३ ही कोटियाँ हैं।—*कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, द्वादशादित्याः त एकत्रिंशत्। इन्द्रश्च वै प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंश इति। शतपथ १४/६/९/३।* आठ वसुओं में पहला वसु अग्नि है तथा बारह आदित्यों में अन्तिम विष्णु है। इस प्रकार अग्नि से विष्णु पर्यन्त ३३ समाविष्ट हो जाते हैं—*अग्निवै देवानामवमः, विष्णुः परमः तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः—ऐतरेय ब्राह्मण १/१.१।* अग्नि और इन्द्र में अग्नि का धर्म ताप है, इन्द्र का धर्म प्रकाश है। प्रकाश देवता का सूचक है, अन्धकार असुरों का सूचक है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य की ओर प्रकाशमय रहता है अदिति कहलाता है, जो भाग अन्धकार की ओर रहता है वह दिति कहलाता है। अदिति के पुत्र समस्त देवता हैं। पृथ्वी में क्योंकि प्रकाश और अन्धकार दोनों है इसलिये पृथ्वी अदिति भी है और दिति भी—*इयं वै पृथिवी अदितिः इयं वै पृथिवी दितिः।*

### देवासुरसङ्ग्राम

परज्योति एवं रूप ज्योति में, स्वज्योति सूर्य है, परज्योति चन्द्रमा है और रूपज्योति पृथ्वी है। ये तीनों भूत ज्योति हैं। एक चौथी ज्ञान ज्योति है, जिसे ज्योतियों की ज्योति कहा जाता है। इनमें स्वज्योति सूर्य में सदा प्रकाश रहता है, इसलिये उसमें देव और असुर दो भाग नहीं होते, न देवासुर सङ्ग्राम होता है—

न त्वं युयुत्से कतमच्च नाहर्न ते मित्रो मघवन् कश्चनस्ति ।  
मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुर्न पुरा युयुत्से ॥

—शतपथ ब्राह्मण ६/१/६/१९ ।

किन्तु परज्योति चन्द्रमा में और रूपज्योति पृथ्वी में अन्धकार और प्रकाश का देवासुर सङ्ग्राम चलता रहता है—देवाश्च वाऽसुराश्च उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे—(शतपथ ब्राह्मण १-२-५-१)

### तीन देवों की तीन शक्तियाँ

अग्नि का सम्बन्ध अर्थशक्ति से, वायु का क्रियाशक्ति से, आदित्य का ज्ञानशक्ति से है। पृथ्वी से जुड़े हुए औषधि, वनस्पति कृमि, कीट, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि का प्रधान बल अर्थशक्ति है। अन्तरिक्ष लोक से जुड़े हुए गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि का प्रधान बल क्रियाशक्ति है। द्युलोक से जुड़े पितृ, ऐन्द्र, प्राजापत्य, तथा ब्रह्म का प्रधान बल ज्ञानशक्ति है।

### भौम देवता

जिन देवताओं का हमने अभी वर्णन किया, वे सौर देवता हैं। वे पुरुषविध नहीं हैं और प्राण रूप होने के कारण अप्रत्यक्ष हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य देवता भी होते हैं, जो पुरुष के समान ही हैं। जिन इन्द्र आदि से अर्जुन आदि राजाओं के मिलने का उल्लेख है वे इन्द्र मनुष्यविध देवता थे। प्राचीन भूगोल के अनुसार सुमेरु पर्वत के दक्षिण में ६ वर्ष उत्तर में ६ वर्ष पूर्व में भद्राश्व वर्ष एवं पश्चिम में केतुमाल वर्ष है। हिमालय, भारतवर्ष। इन वर्षों के मध्य में सुमेरु है। यह सुमेरु ही भौम स्वर्ग है। इसी सुमेरु पर रहने वाले मनुष्यदेवता कहलाते थे। महाभारत के युद्ध के समय इस स्वर्ग में १४वें इन्द्र का राज्य था, जिसका नाम हरिवाहन था। अब ये मनुष्यदेवता सोमवल्ली, सूर्य सदन नाम से प्रसिद्ध विज्ञान-भवन, यज्ञ और धेनु इन चार देव बलों के नष्ट हो जाने से समाप्त हो चुके हैं।

### बहुदेववाद तथा एकेश्वरवाद

वेदों में बारम्बार एक ही देवता को सब देवता कह दिया जाता है। पश्चिम के विद्वानों ने इस विशेषता को रेखाङ्कित किया है। भारत में भी बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद की स्थापना करने वाले विद्वानों ने इस प्रवृत्ति का बारम्बार उल्लेख किया है। पूरा विश्व ब्रह्म ही है। इस दृष्टि से एकेश्वरवाद सत्य है। किन्तु सृष्टि में वह एक ब्रह्म अनेक रूप में परिणत हो गया है। इसलिये बहुदेववाद भी निराधार नहीं है। वैज्ञानिक स्थिति यह है कि यद्यपि किसी प्राण की प्रधानता कहीं एक स्थान पर रहती है, किन्तु गौण रूप में वहाँ दूसरे प्राण भी रहते हैं। इसलिये किसी एक प्राण में सब प्राण समाहित हैं—यह कहना गलत नहीं है। पृथ्वी अग्नि प्रधान है, अग्नि में सब देवता हैं। अग्निः सर्वा देवताः। अन्तरिक्ष वायु प्रधान है, वायु में सब देवता है। वायुः सर्वा देवताः। द्युलोक में इन्द्र प्रधान है, इन्द्र में सब देवता हैं। इन्द्रः सर्वा देवताः। सोम ही इन सब देवताओं का अन्न है, जिससे उन देवताओं का स्वरूप बनता है। इसलिये 'सोमः सर्वा देवताः' कहा जाता है।

अग्नि-सोम का सम्बन्ध विष्णु रूप यज्ञ के द्वारा स्थापित होता है इसलिये “विष्णु सर्वा देवताः” कहा जाता है ।

### १४ प्रकार की सृष्टि

साङ्ख्य मत में आठ प्रकार की सत्त्वगुण प्रधान देव-सृष्टि है । रजोगुण प्रधान मनुष्य सृष्टि एक है तथा तमोगुण प्रधान तिर्यक सृष्टि पाँच हैं—स्थावर, कृमि, कीट, पशु तथा पक्षी । (साङ्ख्यकारिका-५३-५४) । धावा-पृथिवी को निमित्त बनाकर अव्यक्त प्रकृति इस चौदह प्रकार की सृष्टि का निर्माण करती है ।

### सृष्टि के विकासक्रम में देव

वनस्पति के पाँव नहीं हैं । वे स्वयं ही पादप हैं । मनुष्य सृष्टि के पाँव हैं वे सपाद हैं । चेतन सृष्टि में भी (देव सृष्टि में) पाँव नहीं है इसे अपाद कहा जाता है । जैसे-जैसे सौर अंश बढ़ता है जीव पृथिवी से ऊपर उठता है । छोटी लट पूरी पृथिवी से छूती है, ये कृमि सृष्टि है । कीट सृष्टि में सर्प है जिनके पाँव भीतर की ओर रहते हैं । ये कृमि से अधिक तेज चल सकते हैं । फिर सहस्रपाद कीट आते हैं, मक्खी के छः पाँव रहते हैं, दो पंख बन जाते हैं । चींटों के छः पाँव हैं । अधिक विकसित कीड़ों के चार ही पाँव और दो पंख रहते हैं । मनुष्य के केवल दो पाँव रह जाते हैं । वानर अर्थात् अर्द्धमनुष्य दो पाँव को दो हाथ की तरह प्रयोग में ला सकते हैं । यह जीवों के विकास का क्रम है, किन्तु विकास यही समाप्त नहीं होता । मनुष्य में ग्यारह इन्द्रियाँ हैं जबकि देवों में आठ सिद्धि और नौ तुष्टियाँ मिलाकर सत्रह इन्द्रियाँ और हैं । इन्हीं अट्ठाईस इन्द्रियों वाले जीवों को देव कहते हैं । ये सब चान्द्रदेव कहलाते हैं ।

### अन्य देवता

चौथे देवता भूतदेव हैं, जो पृथिवी आदि रूप में हमें दिखायी दे रहे हैं । इन भूतों में जो प्राण अंश है, वही देव तत्त्व है । यह प्राण सूर्य रूप है । प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः—प्रश्नोपनिषद् १/८ । इस सौर प्राण से, जिसे बृहती प्राण भी कहते हैं समस्त विश्व व्याप्त है —

“सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः  
तद्यथायमाकाश प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः  
एवं सर्वाणि भूतान्यापिपीलिकाभ्यः प्राणेन  
बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्

—ऐतरेय आरण्यक २/१/६

पाँचवें देवता अभिमानी देवता हैं, जिन्हें आत्म देवता कहा जाता है । ये अभिमानी देवता ही अक्षर हैं । ये अभिमानी देवता अन्तर्यामी और सर्वव्यापक हैं । स ते अन्तर्यामी अमृतः—शतपथ ब्राह्मण १४/६/८ । पृथिवी, जल इत्यादि इसके शरीर हैं । छठा देवता मन्त्र देवता है । छन्द के कारण देवों के स्वरूप में भेद आता है, इसलिये छन्द भी देवता है । ये छन्द देवता ही मन्त्र देवता हैं । सातवां

जीवात्मा आत्म देवता है। आठवाँ कर्म देवता है। जिस कर्म का जो देवता प्रधान है, वह कर्म देवता कहलाता है।

यहाँ यह भी देख लेना चाहिये कि ब्राह्मण ग्रन्थ देवों के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में देव शब्द का सम्बन्ध द्यु अथवा दिव से जोड़ा गया है—*तद्देवानां देवत्वं यद् दिवमभिपद्या-सृज्यन्त। (शतपथ ब्राह्मण ११.१.६.७) ।*

मैत्रायणी संहिता में दिन से देवताओं का सम्बन्ध बतलाया है—*तस्मै पितृन् स सृजनाय दिवाभवत् तेन देवानसृजत तद् देवानां देवत्वम्। मैत्रायणी संहिता ४.२.१, अपि च, तैत्तिरीय संहिता २.३.८.३।* सम्भवतः दिन से जुड़े होने के कारण ही देवताओं का रूप शुक्ल माना जाता है—*देवा एकरूपाः सर्वे शुक्लाः—जैमिनीय ब्राह्मण १.२७८।* शतपथ ब्राह्मण में दिन को ही देवता कहा है—*अहरेव देवाः।—(शतपथ ब्राह्मण २.१.३.१) दिन का सम्बन्ध देवताओं से है तो रात्रि का असुरों से—अहरेव वै देवा आश्रयन्त रात्रिमसुराः। (ऐतरेय ब्राह्मण ४.५) ।*

सभी देवता व्रतों का पालन करते हैं। उनमें सत्य प्रमुख है—*एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम्। (शतपथ ब्राह्मण १४.१.१.३३) देवताओं ने श्रम, तप और व्रत से ही असुर और राक्षसों को जीता—(जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५२) ।*

कर्म की दृष्टि से देवता अनेक हैं किन्तु वस्तुतः वे एक ही हैं। *कतम एको देव इति, प्राण इति। (वही, २.७७, अपि च, शतपथ ७.५.१.२१) सभी देवताओं का परस्पर ऐसा तादात्म्य है कि किसी एक देव को सर्वदेव कह दिया जाता है—अग्नयो वै सर्वे देवाः। प्रायः देवताओं का तीन भागों में विभाजन रहता है—*अग्निर्वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानां हृदयानि।—(शतपथ ब्राह्मण १.३.४.१२) इनमें वसु आठ हैं रुद्र एकादश और आदित्य द्वादश—अष्टौ वसवः एकादश रुद्रा द्वादश आदित्याः।**

देवता अमर हैं—*अथ ह वै स एव देवः सोऽमर्त्यं (जैमिनीय ब्राह्मण १.९६) उन्हें पाप स्पर्श नहीं कर सकता, न वे सोते हैं—अपहत पाप्मानो वै देवाः ते न स्वपन्ति। (जैमिनीय ब्राह्मण ३.३५४) देवता मनुष्यों से छिपे रहते हैं—तिर इव वै देवा मनुष्येभ्यः (शतपथ ब्राह्मण ३.१.१.८) देवता कभी दुःखी नहीं होते (मैत्रायणी संहिता २.१.१०) देवता किसी के आगे झुकते नहीं—*न हि नमस्कारमति देवाः। (शांखायनारण्यक, १.५) ।**

देवता स्वयं परोक्ष हैं—*परोक्षं वै देवाः। (शतपथ ब्राह्मण ३.१.३.२५) वे परोक्ष की ही कामना करते हैं—परोक्षकामा हि देवाः (शतपथ ब्राह्मण ६.१.१.२) वे न केवल परोक्षप्रिय हैं अपितु प्रत्यक्ष से द्वेष भी करते हैं—परोक्ष प्रिय इव हि देवाः भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः। (गोपथ ब्राह्मण १/२/२१) ।*

प्रजापति ने देवताओं को उत्पन्न किया *एत इति वै प्रजापतिर्देवानसृजत। (ताण्ड्य ब्राह्मण ६.१.१५) मनुष्य और देव दोनों ही प्रजापति हैं—उभयं वै तत् प्रजापतिर्यच्च देवा यच्च मनुष्याः (शतपथ ब्राह्मण ६.८.१.४) इसलिए देव और मनुष्य साथी हैं—उभये ह वा इदमग्रे स आसुर्देवाश्च मनुष्याश्च। (शतपथ ब्राह्मण २.३.४.४) ।*

यज्ञ देवताओं का अपराजेय आयतन है—एतद्वै देवानामपराजितमायतनं यद्यज्ञः (तैत्तिरीय संहिता ३.३.७.७) यज्ञ देवताओं की आत्मा है—सर्वेषां वा एष भूतानां सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः (शतपथ ब्राह्मण १४.३.२.१) ।

देवताओं का छन्द एक अक्षर से सात अक्षर तक है असुरों का छन्द नौ अक्षर से लेकर पन्द्रह अक्षरों तक है—एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सप्ताक्षरं परमन्वाक्षरमसुराणामवमं छन्द पञ्चदशाक्षरं परमम् (ताण्ड्य ब्राह्मण १२.१३.२७) देवता आनन्द रूप हैं—आनन्दात्मानो हव सर्वे देवाः। (शतपथ ब्राह्मण १०.३.५.१३) पितरों के आनन्द से आजानज देवों का आनन्द, आजानज देवों के आनन्द से कर्म देवों का आनन्द और कर्म देवों के आनन्द से देवों का आनन्द सौ गुना है—ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः। स एक आजानजानां देवानामनन्दः...ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः। ये कर्मणा देवानपि यतन्ति...ते ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः (तैत्तिरीयारण्यक, ८.८.२-३ अपि च, तैत्तिरीयोपनिषद् २.८.२-३) ।

देवों का असुरों के साथ भी सहोदर सम्बन्ध है दोनों प्रजापति के पुत्र हैं—इया उ ह वा अग्रे प्राजापत्या आसुर देवाश्चैवासुराश्च। (जैमिनीय ब्राह्मण २.१५०) विद्वान् मनुष्य भी देव हैं—अथ ये ब्राह्मणा शुश्रवांसोऽनुचानास्ते मनुष्यदेवाः (शतपथ ब्राह्मण २.२.२.६) सूर्य से जुड़े होने के कारण देवताओं की दिशा पूर्व मानी गई है—प्राची हि देवानां दिक् (शतपथ ब्राह्मण १.२.५.१७) ।

कहा जा चुका है कि प्राण ही देवता है। देवता प्राण से ही अन्न खाते हैं—प्राणेन वै देवा अन्नमदन्ति अग्निरु देवानां प्राणः। (शतपथ ब्राह्मण १०.१.४.१२) प्राण से ही देवता ढके हैं। जिससे वे ढके हैं उसे वयोनाध या छन्द कहते हैं—प्राणा वै देवा वयोनाधाः प्राणैर्हीदं सर्वं, वयुनं नद्धमथो छन्दांसि वै देवा वयोनाधाश्छन्दोभिर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम्। (शतपथ ब्राह्मण ८.२.२.८) गोपथ ब्राह्मण में मन को ही देव बताया है—मनो देवः (शतपथ ब्राह्मण १.२.१०) दूसरी ओर जैमिनीयोपनिषद् में वाक् को ही सब देवता कहा है—वागिति सर्वे देवाः। (जैमिनीयोपनिषद् १.२.२.२) देवताओं के सब कर्म यज्ञ से ही होते हैं—यदुह किञ्चद् देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यज्ञो वै स्तोमः। (शतपथ ब्राह्मण २.४.३.२) पहले देवता भी मरणधर्मा थे। ये यज्ञ से ही अमृतत्व को प्राप्त हुए—मर्त्या ह वाग्रे देवा आसुः स यदेव ते संवत्सरमापुरथाऽमृता आसुः। (शतपथ ब्राह्मण ११.१.२.१२) यज्ञ देवताओं का अन्न है—यज्ञ उ देवानामन्नम्। (शतपथ ब्राह्मण ८.१.२.१०) यज्ञ देवों की आत्मा है—यज्ञ उ देवानामात्मा। (शतपथ ब्राह्मण ८.६.१.१०) ।

अपेक्षा से किसी भी देव को सर्वोपरि कह दिया जाता है। कहीं अग्नि के लिये सर्वप्रथम यजन करने का विधान है—अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत (कपिष्ठल कठ संहिता ४८.१६) तो कहीं रुद्र को देवताओं में सबसे अधिक बलवान् माना गया है—रुद्रो देवानामोजिष्ठः (काठक संहिता २४.४) वस्तुतः श्रद्धा ही देवों में देवत्व उत्पन्न करती है—श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते। यज्ञ करके हम देवताओं के ऋण से उऋण होते हैं—तेन देवेभ्य ऋणं जायते तद्भ्येभ्य एतत्करोति यदेनान्यजते यदेभ्यो जुहोति। (शतपथ ब्राह्मण १.७.२.२)



देवों के सम्बन्ध में इस सामान्य जानकारी के अनन्तर अग्नि, वायु, इन्द्र तथा आदित्य के सम्बन्ध में विशेष जानकारी देना उचित होगा।

## आठ वसु

पृथिवी का देवता अग्नि है। ये आठ वसु रूप हैं। पुराणों में आठ वसुओं की गिनती अनेक प्रकार से है। एक सूची के अनुसार सूर्य, प्रभात, यज्ञात्मा, प्रत्यूष, द्यौ, ध्रुव, धर और धारा ये आठ वसु हैं। दूसरी सूची के अनुसार ध्रुव, धर, सोम, आपः, वायु, अग्नि, प्रत्यूष और प्रभात ये आठ वसु हैं। तीसरी सूची के अनुसार पञ्चभूत सूर्य, सोम और प्रत्यूष आठ वसु हैं। चौथी सूची के अनुसार पञ्चभूत, सूर्य, चन्द्र और यजमान आठ वसु हैं। पाँचवी सूची के अनुसार पृथ्वी, अन्तरिक्ष द्यु तथा आपः ये चार लोक तथा अग्नि वायु, सूर्य और चन्द्र ये चार देव मिल कर आठ वसु बनते हैं।

## अग्नि की पाँच चिति

अग्नि की पाँच चिति हैं। प्रथम, तृतीय और पञ्चमचिति अग्नि, वायु और आदित्य की है, दूसरी और चौथी चिति देव और ऋषियों की है।

एक मत है कि प्रथम चिति अग्नि-वायु है, दूसरी देवता चिति है, तीसरी इन्द्र, अग्नि और विश्वकर्मा है, चौथी आत्रेयी है, पाँचवी परमेष्ठी है। यह क्षर अग्नि का विवरण हुआ।

## अक्षर अग्नि

अक्षर अग्नि का काम पिण्ड और मूर्ति को जन्म देना है। पिण्ड का निर्माण प्राण के द्वारा प्रेरित मन के परस्पर आघात से होता है। जब मन का परस्पर प्रपीडन होता है तो वह मूर्च्छित हो जाता है और मूर्ति का निर्माण होता है। इस मूर्ति के चारों ओर हृदय से उठा हुआ अरस व्याप्त हो जाता है। इसे अग्नि कहते हैं।

## अग्नि का सर्वदेवत्व

प्राण के बल से वाक् में विकार होता है। उससे दो प्रकार की वृत्तियाँ पैदा होती हैं उनमें बहिःवृत्ति अग्नि है, अन्तर्मुखवृत्ति सोम। अग्नि का जो स्वरूप सोम से मिलता है वह सृष्टि का निर्माण करता है। वह यज्ञ स्वरूप है। अग्नि का जो स्वरूप सोम-विरोधी है, उसे यम कहते हैं। यम के कारण अग्नि और सोम का वियोग हो जाता है और अग्नि बुझ जाती है। अग्नि से जलने वाला सोम है किन्तु अग्नि से न जलकर प्रबल होने पर अग्नि को ही बुझा देने वाला आपः कहलाता है। इस प्रकार अग्नि और यम सोम और आपः मिलकर सृष्टि बनाते हैं। अग्नि का लोक पृथ्वी है, यम का लोक सूर्य है, सोम का लोक चन्द्रमा है, आपः का लोक समुद्र। अग्नि में देवता, सोम में पितर, यम में भी पितर तथा आपः में असुर प्रतिष्ठित हैं। २१ अर्हण तक अग्नि है। १, १५ और २१ स्तोमों में जो विष्णु के तीन विक्रम हैं वे अग्निस्वरूप ही हैं। विष्णु जब अग्नि के आगे जल पर विक्रमण करता है, तो स्वयं भी सोम में मिल जाता है।

ऋक्, यजु और साम में प्राण नामक अग्नि है। जल, वायु और सोम के तीन भृगुओं में अथर्वाग्नि है। आदित्य, यम और अग्नि की तीन अङ्गिराओं के रहने वाली अग्नि ही अग्नि कहलाती है। ऋक् में महोक्थ, साम में महाव्रत और यजुः में पुरुष नामक महाग्नि है। जल में वरुण, वायु में शिव और सोम में पवमान नामक अग्नि है। इस प्रकार अग्नि ही सर्व व्यापक है। विष्णु के तीन विक्रम तीन उर्क् कहलाते हैं। इक्कीसवें अहर्गण तक अग्नि, तैंतीसवें तक आपः और चौतीसवें तक प्राण है। अग्नि को तीन त्रिवृत् कहते हैं, क्योंकि प्रातः सवन गायत्री अग्नि और वसु रूप में त्रिधा विभक्त है, माध्यन्दिन सवन त्रिष्टुप्, इन्द्र और हृद रूप में त्रिधा विभक्त है। तृतीय सवन जगती, वैश्वदैव्य और आदित्य रूप से त्रिधा विभक्त है। प्रातः सवन पृथ्वीलोक से, माध्यन्दिन अन्तरिक्ष से और तृतीय सवन द्युलोक से सम्बद्ध है। इस प्रकार अग्नि ही सब देवता है।

### अग्नि सोम

अग्नि यज्ञ का आवश्यक अङ्ग है। अग्नि में सोम का आहुत होना यज्ञ है। अग्नि तेज है, सोम स्नेह है, अग्नि विशकलन करता है सोम सङ्कोच, अग्नि गतिधर्मा है सोम स्थितिधर्मा है। स्थिति से पदार्थ का निर्माण होता है और गति उसमें विकीर्णता लाती है। ईशोपनिषद् में इसे ही सम्भूति और विनाश कहा है। सम्भूति सोम से होती है और विनाश अग्नि से। इस प्रकार अग्नि और सोम संसार के सभी पदार्थों में व्याप्त है—अग्नीषोमात्मकं जगत्। अग्नि की इस सर्वव्यापकता को समझने के बाद उसके अनेक भेद भी समझे जा सकते हैं।

### त्रिविध अग्नि

सौर अग्नि को ही आहवनीय अग्नि कहा जाता है। इसके विपरीत पृथ्वी की अपनी अग्नि गार्हपत्याग्नि कहलाती है, क्योंकि वह पृथ्वी रूपी ग्रह का पति है। दक्षिण भाग में रहने वाली अग्नि औषधियों को पकाती है। इसे ऋताग्नि अथवा श्रपणाग्नि कहते हैं।

स्तोमों में विभाजन की दृष्टि से भूपिण्ड से त्रिवृत्स्तोम पर्यन्त पृथ्वीलोक है। अतः वहाँ तक गार्हपत्य अग्नि है। पञ्चदश स्तोम पर्यन्त दक्षिणाग्नि है तथा एकविंशस्तोम पर्यन्त आहवनीयाग्नि है। आहवनीयाग्नि सप्तदशस्तोम पर्यन्त ही है, किन्तु सोमाहुति के प्रभाव से यह एकविंश स्तोमपर्यन्त व्याप्त हो जाता है।

अग्नि यज्ञ का मूल है। अग्नि के सात प्रकार हैं। उसी के आधार पर ज्योतिष्टोम नाम के अग्नि यज्ञ के भी सात रूप हो जाते हैं—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थस्तोम, षोडशीस्तोम, अतिरात्रस्तोम, वाजपेयस्तोम, आप्तोर्यामस्तोम। जिस प्रकार अग्नि सात प्रकार का है, उसी प्रकार जिस सोम की आहुति अग्नि में पड़ती है, वह सोम भी सात ही प्रकार का है। ऊपर हमने पृथ्वी लोक की गार्हपत्य अग्नि का वर्णन किया यह प्राणाग्नि है, यही अपान है। दक्षिणाग्नि तरल है, यह वायु है, यही व्यान है। आहवनीय अग्नि विरल है, यह आदित्य है, यही प्राण है। इस प्रकार एक ही अग्नि घन, तरल तथा विरल होकर अग्नि, वायु और आदित्य नाम से तीनों लोकों में व्याप्त हो जाती है। प्राण के रूप में इसमें न ताप है और न ऊष्मा। किन्तु पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौं इन

तीन विश्वों के अग्नि, वायु और आदित्य इन तीन नरों के संयोग से उत्पन्न वैश्वानर में ताप उत्पन्न होता है। इस वैश्वानर में ही सोम की आहुति होती है। इसे ही वैश्वानर यज्ञ कहा जाता है। यही संवत्सर यज्ञ है।

### अध्यात्म में अग्नि

अध्यात्म में भी अग्नि का स्वरूप समझ लेना चाहिये। नाभि के नीचे का भाग गार्हपत्य है। कण्ठ से ऊपर सिर तक आहवनीय अग्नि है। नाभि से ऊपर और कण्ठ से नीचे का भाग वेदि है। दक्षिण भाग में श्रपणीय अग्नि है। कोष्ठ में वैश्वानर अग्नि है। देवप्राण में ग्रन्थिबन्धन होने पर देवात्मा होता है, पृथ्वी प्राण से ग्रन्थिबन्धन होने पर मानुषात्मा होता है। इस प्रकार शरीर में सदा ही सोम-यज्ञ चलता रहता है। ब्रह्मरन्ध्र इसकी महावेदी है। मूलाधार से नाभि तक गार्हपत्य पार्थिव यज्ञ है। ललाट के उत्तर भाग में आहवनीय है। भ्रुवों और नासिका की सन्धि सप्तदशाह सोम यज्ञ है। इस यज्ञ से देवात्मा का उदय होता है।

### अग्नि के अन्य भेद

पृथ्वी को अग्निगर्भा कहा जाता है क्योंकि भूपिण्ड में अग्नि प्रधान है। पार्थिव अग्नि की तीन अवस्थाएं हैं वारुणाग्नि, प्रवर्ग्याग्नि, ब्रह्मौदनाग्नि। वारुणाग्नि "आप्या" नामक जलीय अग्नि से भू पिण्ड का निर्माण करती है। यही अग्नि अपने तेजोभाव से अप् तत्त्व को परिपक्व बनाकर क्रमशः आठ रूपों में परिणत कर देता है। आपः, फेन, मृत्, सिकता, शर्करा, अश्मा, अयः, हिरण्य। इस आप्य प्राण को असुर कहा जाता है। इसी के कारण औषधियों का परिपाक होता है। शरीर में अन्न को पचाने के कारण यही आमात् भी कहलाता है। प्रवर्ग्याग्नि वह है, जो भूपिण्ड के अग्नि द्वारा मल बनाकर बाहर फेंका जाता है। यह प्रवर्ग्याग्नि प्राण रसहीन पदार्थों का भक्षण करता रहता है। निर्ऋतिदेवता इसी पर प्रतिष्ठित है। यह शव अन्न का भक्षक है। इसे क्रव्यात् अग्नि कहते हैं। तीसरा अग्नि हव्यवाट् है जो देवताओं के लिए सोम रस का वहन करता है। यह हव्यवाट् अग्नि ही यज्ञ का अग्नि है। भस्म से आवृत ज्वालाशून्य अग्नि सहरक्षा है। सहरक्षा असुरों का दूत है—*सहरक्षा वै असुराणां दूत आस।* जब इस भस्म को हटाया जाता है तभी यह अग्नि देवताओं से पुरोडाश सङ्गमन कराता है।

अङ्गार का जो भाग भूमि पर रहता है, वायु का प्रवेश न होने के कारण वह भाग प्रज्वलित नहीं होता है। इसलिये उसे आसुरप्राण का अधिष्ठाता माना जाता है।—*यद्वै वातो नाभिवाति तत् सर्वं वरुणादैवत्यम्—कौषीतकि ब्राह्मण।*

ऊपर हमने घन, तरल और विरल तीन अवस्थाओं का दर्शन किया इन्हें ही ब्राह्मण ग्रन्थों में ध्रुव-धरुण-धर्त्र कहा जाता है। उदाहरणतः कर्पूर घन अवस्था में है। वह अग्नि के ताप से पिघलकर तरल अवस्था में आ जाता है तथा उड़ जाने पर वही विरल अवस्था में आ जाता है।

### अग्नि के कार्य

अग्नि का एक नाम अन्नाद है, सोम का नाम अन्न है। इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है।

अग्नि विकास धर्मा तैजस तत्त्व है, सोम सङ्कोच धर्मा स्नेह तत्त्व है। स्नेह का सम्बन्ध सङ्ग्रह से है और तेज का सम्बन्ध त्याग से है। ये दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। त्याग के लिए सङ्ग्रह और सङ्ग्रह के लिये त्याग किया जाता है। त्याग द्वारा हम नवीन पदार्थ का ग्रहण करने के लिये स्थान बनाते हैं। अतः त्याग भी सङ्ग्रह का साधन बनता है। सङ्ग्रह यदि त्याग से रहित हो तो वह जड़ बनकर स्वरूप को ढक लेता है। अतः सङ्ग्रह के साथ त्याग भाव आवश्यक है।

यम और अग्नि के प्राणों के मेल से वायु के परमाणु बनते हैं। सोम और अग्नि के मेल से जल के परमाणु बनते हैं। यम, अग्नि और सोम तीनों प्राणों के संयोग से मृत्तिका के परमाणु बनते हैं।

वेदों के पाँच देवताओं में अग्नि अन्यतम है—ये पाँच देवता हैं—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम। इनमें प्रथम तीन—ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र—पदार्थ के केन्द्र का निर्माण करते हैं। ब्रह्मा स्थिति है, विष्णु आगति है और इन्द्र गति है। अग्नि और सोम पदार्थ के पृष्ठ भाग का निर्माण करते हैं। अग्नि गति है और सोम आगति है, किन्तु इन गति और आगति के साथ स्थिति मिली हुई है।

अग्नि को ज्योति के रूप में देखें, तो हम विश्व के पाँच पर्वों में इस ज्योति को देख सकते हैं। स्वयम्भू परम ज्योति है। इसका सम्बन्ध ब्रह्मा से है। परमेष्ठी अव्यक्त ज्योति है। इसका सम्बन्ध विष्णु से है। सूर्य स्वः ज्योति है। इसका सम्बन्ध इन्द्र से है। चन्द्रमा पर ज्योति है। इसका सम्बन्ध सोम से है। पृथ्वी रूप ज्योति है। इसका सम्बन्ध अग्नि से है।

अग्नि को अपने कार्य में जल से सहायता मिलती है। रसरूप पानी के बिना औषधियों का परिपाक नहीं हो सकता। नया मकान पानी से भिगोया जाता है ताकि सूर्य के ताप से वह दृढ़ हो जाये। इसका कारण यह है कि अग्नि को अन्तर्यामि सम्बन्ध से पानी ही पकड़ सकता है। जठर में भी पानी के बिना अन्न नहीं पच पाता। इस प्रकार पानी अग्नि की प्रतिष्ठा है।

## अग्नि के अन्य भेद

वाक् तत्त्व भी अग्नि है। वाक् तत्त्व को वेदाग्नि कहा जाता है। यही सत्याग्नि भी है। अप तत्त्व ऋताग्नि कहलाता है। यही सुब्रह्मा अग्नि है। अग्नि रस है, वायु रसतर है और आदित्य रसतम है। यही तीन तत्त्व हमारे भोजन में तीन रूपों में मिलते हैं—दधि, घृत और मधु। इनमें दधि पार्थिव है, घृत अन्तरिक्ष से जुड़ा है और मधु द्युलोक से जुड़ा है। ये तीनों ही अन्न को सरस बनाते हैं। वर्षा का जल घृत रूप ही है। घृत भी एक प्रकार का अग्नि है। वह अग्नि इन्द्र से प्रतिमूर्छित है। अग्नि के चार भेद हैं—पौरुषाग्नि, प्राकृताग्नि, विराडग्नि और संवत्सर अग्नि। अक्षर पुरुष की पाँच कलाओं में जो अग्नि है वह पौरुषाग्नि है। वस्तु के स्वरूप को बनाने वाली अग्नि प्राकृताग्नि है। ऋषि प्राण की समष्टि रूप अग्नि विराडग्नि है। यज्ञ की सौर अग्नि संवत्सर अग्नि है।

प्रकारान्तर से अग्नि पुनः चार प्रकार की है—ब्रह्म, सुब्रह्म, शुक्र तथा भूत। ब्रह्म अग्नि का सम्बन्ध स्वयम्भू से है, परमेष्ठी की अग्नि सुब्रह्म अग्नि है। इन दोनों के संयोग से उत्पन्न होने

वाली शुक्र अग्नि है। जिसे हम स्थूल अग्नि के रूप में देखते हैं, वह भूताग्नि है। अग्नि के अन्य चार भेद हैं—रसाग्नि, आर्त्तवाग्नि, छन्दस्याग्नि और सावित्राग्नि। रसाग्नि पदार्थों में दधि, घृत और मधु के रूप में रस उत्पन्न करती है। यही हव्यवाट कहलाती है। आर्त्तवाग्नि दक्षिण से उत्तर की ओर जानेवाली अग्नि है, जो वनस्पतियों का परिपाक करती है। छन्दस्याग्नि वाक् अग्नि है और सावित्राग्नि सौर अग्नि है।

## अग्नि-सोम

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ से घनाग्नि, तरलाग्नि और विरलाग्नि दधि, घृत और मधु का सञ्चार अन्न में करते हैं। इनमें दधि अश्मासोम है, जो अस्थि का निर्माण करता है। अश्मा सोम से युक्त प्राण को दध्यङ् कहते हैं। 'ऋषि' प्राण का नाम है अतः इसे दध्यङ् ऋषि कहा जाता है। पुराणों में यही दधीचि बन गया। इसी दधीचि की अस्थि के वज्र से इन्द्र ने असुरों को मारा। अश्मासोम दाह्य है, सौर सावित्राग्नि दाहक है। अश्मासोम की सौर अग्नि में आहुति होती है और अन्धकार का नाश होता है। यही असुरों का नाश है। इन्द्रो दधीचो अस्थिभर्वृत्राप्य प्रतिस्कृतः। जघान नवतीर्नव।—ऋक् संहिता १/८४/१३। अग्नि अङ्गिरा है तो आपः भृगु है। भृगु का धर्म स्नेह है, अग्नि का तेजोधर्म है। इन दोनों के संयोग से भू-पिण्ड का निर्माण होता है।

सोम और अग्नि के युग्म को स्त्री-पुरुष के माध्यम से भी समझा जा सकता है। दक्षिण में स्त्री सोम्या है। इसलिए चरक ने शैय्या पर चढ़ते समय पुरुष को पहले दाहिना पैर और स्त्री को बायाँ पैर रखने की सलाह दी है। हमारे शरीर में भी दाहिना भाग अग्नि से बना है तथा बायाँ भाग सोम से बना है। इसलिए दाहिना हाथ अधिक सबल होता है बायाँ हाथ निर्बल होता है।

## वषट्कार

शरीर का अग्नि वायु के आघात से वाक् बन जाता है, इसलिए वाक् को भी अग्नि कहा जाता है। "अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्" मौन से वाक् का व्यय नहीं होता इसलिए मौन शक्ति की रक्षा करता है। किसी भी पदार्थ के मण्डल को तैतीस भागों में बांटे तो इन तैतीस विभागों के छः विभाग होते हैं—नौ अहर्गणों का पहला विभाग, पन्द्रह का दूसरा, सत्रह का तीसरा, इक्कीस का चौथा, सत्ताईस का पाँचवा और तैतीस का छठा। ये छहों विभाग वाक् के हैं इसलिए इन्हें वषट्कार कहते हैं। इनमें इक्कीसवें अहर्गण तक अग्नि रहता है।

अग्नि हमारे शरीर में अनेक कार्य करती है। जो अन्न हम लेते हैं उसका मल भाग आत्मा का विरोधी है। रस भाग आत्मा का अवरोधी है। रस भाग को आत्मा रख लेता है, मल भाग केश-लोम बन जाता है। हमारे शरीर में अग्नि से प्राण का, वायु से शरीर का और आदित्य से रूप का विकास होता है।

## अग्नि के सम्बन्ध में मतभेद

अग्नि के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक विषयों के अनेक मत थे। शाकायनि के अनुसार वायु ही अग्नि है, क्योंकि अग्नि का काम विकास है और विकास गति से होता है तथा गति वायु

का विशेष धर्म है। यह वायु ही सङ्घात रूप आदित्य अग्नि प्रथमज है, किन्तु शाध्यायिनि का मत है कि पार्थिव चित्याग्नि ही मुख्य है। वस्तुस्थिति यह है कि तीनों अग्नियों का जनक संवत्सर अग्नि है। पार्थिव अग्नि उसकी वाक् है, वायु उसका प्राण है। आदित्य उसका चक्षु है। स्थिति रूप में यही घनाग्नि है। गति रूप में यही तरल रूप तथा विरल अग्नि है। शाध्यायिनि का मत है—*संवत्सर एवाग्निः*। अग्नि का एक स्वरूप ऋताग्नि भी है। यह केन्द्र विच्युत प्रवर्गाग्नि है जिसे सोमात्मक अग्नि कहा जाता है। यह अग्नि अन्नाद न होकर अन्न रूप है, चन्द्रमा अग्नि का ऐसा ही रूप है।

ब्रह्माग्नि रूप स्वयम्भू का देवता ऋषि है, देवाग्नि रूप सूर्य का देवता देव है तथा भूताग्नि रूप भूपिण्ड का देवता भूत है। द्युलोक इन्द्र प्रधान है, पार्थिव संस्था अग्नि प्रधान है। इन्द्र क्षेत्र है अग्नि ब्रह्म है। उनके परस्पर सहयोग से ही सृष्टि बनती है।

*अथेन्द्राग्नी वा असृज्येताम् । ब्रह्म च, क्षेत्रं च ।*

*अग्निरेव ब्रह्मेन्द्रः क्षेत्रम् तौ सृष्टौ नानैवास्ताम् ।*

*तावब्रूतां - न वा इत्थं सन्तौ शक्ष्यावः प्रजाः प्रजनयितुम् ।*

*एकां रूपमुभावसावेति । तावेकं रूपमुभावभवताम् ।*

—(शतपथ ब्राह्मण १०/४/१/५)

## ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नि

ब्राह्मणग्रन्थों में अग्नि का विस्तार से वर्णन है। शतपथ कहता है कि सब देवताओं में प्रथम अग्नि का जन्म हुआ इसलिए इसे अग्नि कहा जाता है। जैसा कि वैदिक भाषा की प्रवृत्ति है, मूल शब्द को रूपान्तरित करके प्रयोग किया जाता है। जिसे ब्राह्मण ग्रन्थ परोक्ष शैली कहते हैं। उसी शैली के अनुसार अग्नि अग्नि हो गया—*स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्निरग्रिर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोऽक्षम्*। शतपथ ब्राह्मण ६.१.११। इसलिए देवताओं में अग्नि को प्रथम स्थान दिया गया है—*सोऽग्निमेवाग्रे असृजत्*—काठक संहिता ७.५। इसलिए अग्नि को सर्वप्रथम आहुति दी जाती है—*अग्निः प्रथम इज्यते*। मैत्रायणी संहिता ३.८.१। *अपि च, अग्नि देवतानां प्रथम यजेत्*—कपिष्ठल कठ संहिता ४८.१६।

वस्तुतः अग्नि को ही सब देवता बताया गया है—*अग्निर्वै सर्वा देवताः*। मैत्रायणी संहिता १.४.१३। अग्नि को सब देवताओं की आत्मा बताया गया है—*अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा*—शतपथ १४.३.२.५। वस्तुतः सब देवता प्राण हैं तो अग्नि भी प्राण ही है—*प्राणा अग्निः*—शतपथ ब्राह्मण २.२.९। अग्नि को सब देवता बताने का अर्थ है कि अग्नि वह मूल प्राण है जो अन्य देवप्राणों में परिवर्तित होता है। अग्नि अन्य देवताओं में परिवर्तित होता है। अग्नि के अन्य देवताओं में परिणत होने की प्रक्रिया शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार दी गई है। जब अग्नि प्रथम समृद्ध होता है और इसमें उष्णता आती है तो वह रुद्र होता है। जब यह और भी अधिक प्रदीप्त होता है तो वरुण हो जाता है और जब यह अत्यन्त तीव्र रूप में प्रज्वलित होता है तो इन्द्र हो जाता है। जब इसकी किरणें तिरछी होने लगती हैं और यह शान्त होने लगता है तो मित्र हो जाता है

और जब अङ्गारा बन जाता है तो ब्रह्म हो जाता है—

अथ यत्रैतत्प्रथमं समिद्धो भवति, धूप्यत एव तर्हि हैष भवति रुद्रः । अथ यत्रैतत्प्रदीप्तरो भवति, तर्हि हैष भवति वरुणः । अथ यत्रैतत्प्रदीप्तो भवति उच्चैर्धूमः परमया जूत्या बल्बलीति तर्हि हैष भवतीन्द्रः । अथ यत्रैतत्प्रतिरामिव तिरश्चीवार्चिः संशाम्यतो भवति तर्हि हैष भवति मित्रः । अथ यत्रैतदङ्गाराश्चाकाशयन्त इव । तर्हि हैष भवति ब्रह्म—शतपथ ब्राह्मण २.३.२.१-१३ ।

जब अग्नि बढ़ता है और घटता है तो वह उसका मैत्रावरुण रूप है—अथ यदुच्च हस्यति तदस्य मैत्रावरुणं रूपम्—ऐतरेय ब्राह्मण ३.४ । काण्व शतपथ ब्राह्मण में माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण की सरणि से थोड़ा हटकर अग्नि का सर्वदेवमयत्व इस रूप में कहा गया है कि अग्नि जब प्रथम प्रज्वलित होता है तो वरुण होता है । जब और बढ़ जाता है तो रुद्र हो जाता है और जब सबसे अधिक बढ़ जाता है तो इन्द्र हो जाता है । केवल किरणें मित्र हैं और अङ्गारे ब्रह्म हैं—स यत्र ह वा एष प्रथमं संप्रधूप्य प्रज्वलति तद्ध वरुणो भवत्यथ यत्र संप्रज्वलितो भवत्यवरोणव वर्षिमाणं तद्ध रुद्रो भवत्यथ यत्र वर्षिष्ठं ज्वलति तद्धेन्द्रो भवत्यथ यत्र नितरामर्चयो भवन्ति तद्ध मित्रो भवत्यथ यत्राङ्गारा मल्मलायन्तीव तद्ध ब्रह्म भवन्ति—काण्वशतपथ ३.१.१.१ ।

यद्यपि अग्नि का सम्बन्ध सब देवताओं से है पर स्वयं अग्नि पृथिवी स्थानीय देवता है । वैदिक त्रैतवाद में तीन देव, तीन लोक, तीन वेद तथा आत्मा के तीन मनोताओं का सम्बन्ध इस प्रकार है—

देव	लोक	वेद	आत्मा के मनोता
अग्नि	भू	ऋग्वेद	वाक्
वायु	भुवः	यजुर्वेद	प्राण
आदित्य	स्वः	सामवेद	मन

अग्नि से भू अथवा पृथिवी का सम्बन्ध बतलाते हुए कहा गया है—अयं वा अग्निर्लोकः । शतपथ ब्राह्मण ६.६.३.१५ अपि च, अयं वै लोको अग्निः—शतपथ ब्राह्मण १४.१.१.१४ । तैत्तिरीय आरण्यक कहता है भू ही अग्नि है—भूरिति वा अग्निः—तैत्तिरीय आरण्यक ७.५.२ । इसी प्रकार अग्नि को ऋग्वेद से भी जोड़ा गया है—अग्नेर्ऋग्वेदः—शतपथ ब्राह्मण ११.५.८.२ । आत्मा के तीन मनोताओं में अग्नि का सम्बन्ध वाक् से है—अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्—ऐतरेयआरण्यक २.४.२ । यह मानों अग्नि ही वाक् में आहुति थी—अग्निर्वाचि (हुतः)—शांखायन आरण्यक १०.१ । जैमिनीय ब्राह्मण में अग्नि को वाक् कहा है—अग्निर्वै वाक्—जैमिनीय ब्राह्मण २.५४ । काठक संहिता में वाक् पृथिवी अग्नि और रथन्तर साम का एक साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा जो वाक् पृथिवी है वही अग्नि में है, वही रथन्तर में है—या (वाक्) पृथिव्यां साऽग्नौ सा रथन्तरे—काठक संहिता १४.५ । पृथिवी का छन्द गायत्री होने के कारण पृथिवी से सम्बद्ध गायत्री छन्द भी अग्नि से जुड़ा हुआ है—अग्निर्गायत्री छन्दाः—काठकसंहिता, इसी नाते अग्नि शरीर है—अग्निः शरीरम्—तैत्तिरीय संहिता २.२.१०.४ । यह त्रिवृत् स्तोम है—अग्निरेवैष

यत्त्रिवृत्तोमः—जैमिनीय ब्राह्मण २.९० ।

अग्नि विराट् है—अग्निर्वै विराट्—काठक संहिता १८.१९, तो वायु हिरण्यगर्भ है और आदित्य प्राज्ञ है। विराट् के रूप में अग्नि पदार्थ के शरीर का निर्माण करता है—विश्वा हि रूपाण्यग्निः—मैत्रायणी संहिता ३.२.१ ।

इसी रूप में अग्नि विश्वकर्मा है—विश्वकर्मा अयमग्निः—शतपथ ब्राह्मण ९.२.२.२ । इसी रूप में वह प्रजापति का विराट् स्रष्टा है—विराट् स्रष्टा प्रजापतेः—तैत्तिरीय संहिता १.२.२.२७ । वह प्रजापति है—अग्निः प्रजापतिः—काठक संहिता २२.७.१० । वह उत्पन्न करने वाला है—अग्निः प्रजनयिता—मैत्रायणीसंहिता, ६.७ । वह सविता है—अग्निरेव सविता—गोपथ ब्राह्मण १.१.३३ । वही प्रजननशक्ति है—अग्निः प्रजननम्—गोपथब्राह्मण, १.२.१५ ।

अग्नि और सोम का जोड़ा है। अग्नि दिन है तो सोम रात्रि—अग्निर्वा अहः सोमो रात्रिः—शतपथ ३.४.३.१५ अपि च । सोम अन्न है—सोमो अन्नम्—काठक संहिता १३.१२, तो अग्नि अन्नाद है—अग्निर्वै देवानामन्नादः । अन्नादोऽग्निः—शतपथ २.१.३.२८ । अन्नाद होने के कारण अग्नि को अन्नपति भी कहा जाता है—अन्नादो वा एषोऽन्नपतिर्यदग्निः—ऐतरेय ब्राह्मण १.८ । अग्नि के द्वारा ही देवता अन्न खाते हैं—अग्निना वै देवा अन्नमदन्ति—काठक संहिता ८.४ ।

अग्नि पृथिवी का देवता है। उसका सम्बन्ध आठ वसुओं से है—अग्निर्वै वसुमान्—मैत्रायणी संहिता ४.१.१४ । तैत्तिरीय आरण्यक ने आठ वसुओं की संख्या इस प्रकार दी है—अग्निश्च जातवेदाश्च सहोजा अजिरा प्रभुः । वैश्वानरो नर्यापाश्च पडिक्तराधाश्च सप्तमः । विसर्पेवाष्टमोऽग्नीनाम् । एतेऽष्टौ वसवः क्षिता इति—तैत्तिरीयाराण्यक, १.९.१.१ । इन वसुओं की आठ संख्या होने के कारण ही अग्नि के लिए पुरोडाश अष्टकपालों से बनता है—अग्नय आयुष्मते पुरोडाशमष्टकपालं निर्वपेद्यः कामयेत सर्वमायुरियामिति—तैत्तिरीय संहिता २.२.३.२ । इसी प्रकार आठ अक्षरों वाले अनुष्टुप् छन्द को भी अग्नि की प्रिय शरीर बताया गया है—अनुष्टुभ्वाग्नेः प्रिया तनूः—काठक संहिता १९.५ ।

अग्नि का तरल रूप वायु है तो विरल रूप सूर्य है इसलिए वायु भी अग्नि है—वायुर्वा अग्निः । ऐतरेय ब्राह्मण २.३४—तथा आदित्य भी अग्नि है—आदित्योऽग्निः—काठक संकलन ८३ । अग्नि का सम्बन्ध वाक् से है वायु का प्राण से, आदित्य का मन से और वाक् प्राण मन ही आत्मा है इसलिए मानों अग्नि ही आत्मा है—आत्मैवाग्निः—शतपथ ६.७.१.२० । आत्मा और ब्रह्म में अन्तर नहीं है इसलिए अग्नि ब्रह्म है—अयमग्निर्ब्रह्म—वही, ९.२.१.१५ ।

अग्नि ही पुरुष में जाकर वैश्वानर बन जाता है—पुरुष एवाग्निर्वैश्वानरः—जैमिनीय ब्राह्मण १.४५ । यह वैश्वानर ही अन्न को पकाता है—अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमत्यते—शतपथ १४.८.१०.१ ।

क्योंकि अग्नि पदार्थ के मूर्त पक्ष का निर्माण करता है और पदार्थ का मूर्त रूप ही उसे आच्छादित करने के कारण छन्द कहलाता है इसलिए छन्दों को अग्नि का शरीर कहा गया है—छन्दांसि खलु वा अग्नेः प्रिया तनूः—तैत्तिरीय संहिता ५.१.५.३ । छन्द मानो अग्नि के वस्त्र



हैं। अग्नि छन्दों से ही ढका जाता है—छन्दांसि वा अग्नेर्वासि छन्दांस्येष वस्ते—मैत्रायणी संहिता ३.१.५। अग्नि अन्नाद के रूप में अन्न को ग्रहण करता है। उस अन्न के रस से शरीर का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के कारण ही शरीर में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का ही नाम मृत्यु है। इसलिए अग्नि को ही मृत्यु कहा गया है—अग्निर्वै मृत्युः—शतपथ १४.६.२.१०।

अग्नि का एक रूप भरत है—अग्नि देवताओं के लिए हवि ले जाता है इसलिए उसका नाम भरत है—अग्निर्वै भरतः। स वै देवेभ्यो हव्यं भरति—कौषीतकि ब्राह्मण ३.२। अग्नि का यह भरत रूप ब्राह्मण रूप है जिसके कारण अग्नि महान् है—अग्नेऽमहाँ असि ब्राह्मण भरत—कौषीतकि ब्राह्मण, ३.२। अग्नि केवल देवताओं का ही हव्यवहन नहीं करती अपितु प्रजाओं का भी प्राण भरण करती है—एष उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्मादेवाह भारतेति—शतपथ ब्राह्मण १.४.२.२। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को भरत कहने का एक कारण यह भी दिया है कि अग्नि एक है किन्तु उसे अनेक रूपों में धारण किया जाता है—यदेनमेकं सन्तं बहुधा विहरन्ति—ऐतरेय ब्राह्मण १.२८।

जब तक अग्नि को सोम मिलता रहता है इसका शिव रूप होता है किन्तु यही अग्नि जब सोम की आहुति नहीं पाता तो रुद्र रूप हो जाता है—अग्निर्वै रुद्रः—मैत्रायणी संहिता २.१.१०। अग्नि में सोम की आहुति ही यज्ञ है। मानो अग्नि ही यज्ञ है—अग्निर्वै यज्ञः—वही, ३.६.१। अग्नि भू लोक का देवता होने के कारण यज्ञ का एक छोर है तो विष्णु द्युलोक का देवता होने के कारण दूसरा छोर है—अग्निर्वै यज्ञस्यान्तोऽवस्तात् विष्णुः परस्तात्—मैत्रायणी संहिता ४.३.१। इसे ही दूसरे शब्दों में इस रूप में कहा जा सकता है। अग्नि देवताओं में प्रथम है विष्णु चरम है—अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः—काठक संहिता २२.१३।

अग्नि ठोस पदार्थों का निर्माण करने में सिकता से लेकर स्वर्ग तक आठ पदार्थों का निर्माण करता है। उसमें क्योंकि स्वर्ण अन्तिम है इसलिए हिरण्य को अग्नि का रेतस् कहा गया है—अग्ने रेतो हिरण्यम्—शतपथ २.२.३.२८। मैत्रायणी संहिता कहती है कि मनुष्य को दो चक्षु हैं। वह रात में अग्नि से देखता है दिन में सूर्य से—अग्नेर्वै मनुष्या नक्तं चक्षुषा पश्यन्ति सूर्यस्य दिवा—मैत्रायणी संहिता २.३.६। काठक संहिता में अग्नि को मनुष्यों का चक्षु बताया है विष्णु को देवताओं का—अग्नेर्वै मनुष्याश्चक्षुषा पश्यन्ति विष्णोर्देवताः—काठक संहिता १०.१।

अग्नि से सभी लौकिक पदार्थों की प्रार्थना की गई है—आयु, तेज, मेधा, सन्तति, धन—आ वर्तस्वाऽऽयुषा वर्चसा मेधया प्रजया धनेन—तैत्तिरीय संहिता ४.२.१.२।

वैदिक अद्वैत दृष्टि विविधता में एकता को कभी नहीं भूलती। इसलिए यद्यपि अग्नि मुख्यतः वाक् है, तथापि वह प्राण भी है और मन भी—अग्निर्वै प्राणः—जैमिनीयोपनिषद् ४.११.११ तथा मन एवाग्निः—शतपथ १०.१.२.३। अग्नि देवता तो है ही ऋषि भी है—अग्निर्ऋषिः—मैत्रायणी संहिता १.६.१।

## ब्राह्मण ग्रन्थों में वायु

अग्नि पृथिवी का देवता है तो वायु अन्तरिक्ष का देवता है—वायुरसि अन्तरिक्षे श्रितः—  
तैत्तिरीय संहिता ३.११.१.९। इस नाते यदि अग्नि का सम्बन्ध भू से है, तो वायु का सम्बन्ध भुवः  
से है। यदि अग्नि का सम्बन्ध ऋग्वेद से है तो वायु का सम्बन्ध यजुर्वेद से है—भुव इत्येव  
यजुर्वेदस्य रसमादत्त। तदिदमन्तरिक्षमभवत्। तस्य यो रसः स वायुरभवद्रसस्य रसः—  
जैमिनीयोपनिषद् १.१.१.४। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि वायु ही यजुः है—वायुरेव यजुः—शतपथ  
१०.३.५.२। वायु ही प्रजाओं का प्राण बना—वायुर्भूत्वा प्रजानां प्राणोऽभवत्—जैमिनीय ब्राह्मण  
१.३.१.४। वायु का सम्बन्ध गति से है—वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता—तैत्तिरीय संहिता २.१.१.१। अग्नि  
पदार्थ के मूर्त रूप का निर्माण करता है वायु उसमें गति देती है। इसलिए वायु को विश्वकर्मा  
कहा जाता है—अयं वै वायुर्विश्वकर्मा योऽयं पवत एष हीदं सर्वं करोति—शतपथ ब्राह्मण  
८.१.१.७। सब देवता इसी से उद्भूत होते हैं—अयं वै समुद्रः योऽयं पवत एतस्माद् वै समुद्रात्सर्वे  
देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति—वही, १४.२.२.२। तैत्तिरीयारण्यक में वायु का जल, अग्नि, यज्ञ,  
सोम इत्यादि सब देवताओं से तादात्म्य जोड़ा गया है—त्वामापो अनु सर्वाश्चरन्ति त्वं भर्ता  
मातरिश्वा प्रजानाम्। त्वमेकोऽसि बहूनुप्रविष्टः। नमस्ते अस्तु सुहवो म एधि—तैत्तिरीयारण्यक,  
३.१४.३।

वायु प्रजापति है—अर्धं ह प्रजापतेर्वायुरर्धं प्रजापतिः—शतपथ ६.२.२.११। वह सर्वव्यापक  
है—न खलु वै किञ्चन वायुनाऽनभिगतमस्ति—मैत्रायणी संहिता २.२.७। वाक् उसकी पत्नी  
है—वाग्वायोः पत्नी—मैत्रायणी संहिता १.९.२। यह वायु पाँच प्रकार की है—स एष वायुः पञ्चविधः  
प्राणोऽपानोऽव्यान उदानः समानः—ऐतरेयारण्यक २.३.३।

वायु का अन्तरिक्ष से सम्बन्ध बहुत प्रसिद्ध है। मैत्रायणी संहिता कहती है कि अन्तरिक्ष में  
जो शान्ति है वह वायु के कारण है—अन्तरिक्षशान्तिस्तद्वायुना शान्तिः—मैत्रायणी संहिता ४.७.२९  
यदि अन्तरिक्ष समिधा है तो वायु ही उसे समिद्ध करती है—अन्तरिक्षं समित् तां वायुः समिन्दे—  
मैत्रायणी संहिता, ४.९.२३। अन्तरिक्ष का देवता वायु है और छन्द प्रमा है—प्रमा छन्दस्तदन्तरिक्षं  
वायुर्देवता—मैत्रायणी संहिता, २.१३.१४।

दूसरी ओर वायु का देवता त्रिष्टुप् को बतलाया है—यजुषां वायुर्देवतं त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं  
स्थानम्—गोपथ १.१.२९। अन्तरिक्ष में जो यज्ञ में बाधा डालने वाले देव हैं वायु उनसे रक्षा करता  
है—ये देवो यज्ञहो यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यास्ते। वायुर्मा तेभ्यो रक्षतु—काठक संहिता ५.६। वायु  
अन्तरिक्ष का देवता है—वायुर्वान्तरिक्षस्याध्यक्षः—मैत्रायणी संहिता ४.१.१।

वायु को अग्नि का तेज बताया गया है इसलिए वायु के पीछे अग्नि जाती है—वायुर्वा  
अग्नेस्तेजस्तस्मात् वायुमग्निरन्वेति—मैत्रायणी संहिता ३.१.१०। वायु अग्नि का ही एक रूप है  
अतः वायु को अग्नि भी बताया है—वातः प्राणः तदयमग्निः—मैत्रायणी संहिता १.६.२ तैत्तिरीय  
आरण्यक ने वायु से अग्नि और अग्नि से जल की उत्पत्ति बतलाई है—वायोरग्निः अग्नेरापः—  
तैत्तिरीयारण्यक ८.१। वायु अन्तरिक्षस्थानीय है, इन्द्र भी अन्तरिक्ष स्थानीय है। वस्तुतः जो वायु

है वही इन्द्र है जो इन्द्र है वही वायु है—यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः—शतपथ ब्राह्मण ४.१.३.१९ वायु सूत्रात्मा है—तदसावादित्य इमाल्लोकान्तसूत्रे समावयते तद्यत्तसूत्रं वायुः स—शतपथ ब्राह्मण ८.७.३.१० ।

वायु पशुओं का देवता है—ते (पशवः) अबुवन् वायुर्वास्माकमीशे—जैमिनीयोपनिषद् १.१६.३.४ । अन्तरिक्ष पशुओं का देवता है, वायु अन्तरिक्ष का अध्यक्ष है—वायुर्वान्तरिक्षस्याध्यक्षः अन्तरिक्षदेवत्यः पशवः—कपिष्ठलकठसंहिता, ४६.८ । तैत्तिरीय संहिता कहती है वायु पशुओं का प्रिय धाम है—वायुर्वै पशूनां प्रियं धाम—तैत्तिरीय संहिता ५.५.१.३ ।

वायु प्राण ही है—प्राण उ वा वायुः—शतपथ ब्राह्मण ८.४.१.८ । प्राण से वायु उत्पन्न हुआ—प्राणाद्वायुरजायत—तैत्तिरीयारण्यक, ३.१२.६ । प्राण का वायु ही देवता है—वायुदेवत्यो वै प्राणः—तैत्तिरीय संहिता ६.३.७.४ । वायु ही पुरुष के अन्दर जाकर प्राण बनता है—सोऽयं (वायुः) पुरुषेऽन्ते प्रविष्टस्त्रेधा विहितः प्राण उदानो व्यान इति—शतपथ ब्राह्मण ३.१.३.२० । वाक् को भी वायु बताया है—वाग्वै वायुः—तैत्तिरीय ब्राह्मण १.८.८.१ ।

## इन्द्र

सभी देवता प्राण हैं । इन्द्र देवताओं का राजा होने के नाते सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसलिए इसे मध्य में प्रदीप्त होने वाला प्राण कहा जाता है । इन्ध का अर्थ है प्रदीप्त । इन्ध ही बदलकर इन्द्र हो गया है—स योऽयं मध्ये प्राणः एष एवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यत इन्द्रियेणैन्द्र यदैन्द्र तस्मादिन्द्र इन्धो ह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोऽक्षम्—शतपथ ब्राह्मण ६.१.१.२ । कपिष्ठल कठ संहिता में प्राण और अपान के मध्य में स्थित व्यान को इन्द्र बताया गया है—इन्द्रं मध्ये करोति वायुमभितः प्राणापानयोर्विधृत्यै इन्द्रियं वै व्यानः—कपिष्ठल कठ संहिता ४२.३ । मध्य में स्थित होने के कारण ही इन्द्र को हृदय भी कहा गया है—हृदयमेव इन्द्रः—शतपथ ब्राह्मण १२.९.१.१५ । इन्द्र सब देवताओं का आधार है—अतिष्ठा वा इन्द्रो देवतानाम्—काण्व शतपथ, ७.२.३.६ । इन्द्र देवताओं में सबसे अधिक शक्तिशाली है—इन्द्रमबुवन् (देवाः) 'त्वं वै नो वीर्यावतमोऽसि इति'—तैत्तिरीय संहिता २.४.२.१ । शतपथ ब्राह्मण में इन्द्र को देवताओं में श्रेष्ठ बताया गया है—इन्द्रश्रेष्ठा देवा इति—माध्यन्दिन शतपथ १.६.३.२२ ।

इन्द्र का सम्बन्ध बारम्बार इन्द्रियों से जोड़ा गया है । इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह इन्द्रियों को स्थापित करे । इन्द्र का यही इन्द्रत्व है कि उसने इन्द्रियों को स्थापित किया—अस्मिन्वा इदमिन्द्रियं प्रत्यस्थादिति तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम्—तैत्तिरीयसंहिता २.२.१०.४ । इन्द्रियों को ही इन्द्र बताया है—इन्द्रियमिन्द्रः—मैत्रायणी संहिता ४.७.३ । इन्द्रियों का वीर्य इन्द्र है—इन्द्रियं वीर्यमिन्द्रः—मैत्रायणीसंहिता, ३.४.१ । इन्द्र बल का स्वामी है—इन्द्रो बलं बलपतिः—शतपथ ब्राह्मण ११.४.३.१२ । देवताओं में इन्द्र ही सबसे अधिक ओजस्वी तथा बलवान् है—इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः—कौषीतकि ब्राह्मण ६.१४ ।

इन्द्र अपने बल के द्वारा रक्षा भी करता है और नाश भी । रक्षक के नाते वह क्षत्र है—इन्द्रः क्षत्रम्—शतपथ ब्राह्मण १४.४.१.५ । इन्द्र अपने बल द्वारा असुरों का नाश करता है—इन्द्रो वा

असुरान् हत्वा पूत द्रवामेधोऽमन्यत—जैमिनीय ब्राह्मण ३.२२८ । इन्द्र ने जिन असुरों को मारा वृत्र उनमें मुख्य है—इन्द्रो वृत्रमहन्—जैमिनीय ब्राह्मण, १.१९५ । इन्द्र को मारने के कारण ही इन्द्र महेन्द्र हो गया—इन्द्रो वा एष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रं हत्वा महाराजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत्—शतपथ ब्राह्मण १.६.४.२१, ४.३.३.१७ । इन्द्र वृत्र को मारकर विश्वकर्मा बना—इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्माऽभवत्—ऐतरेय ब्राह्मण ४.२२ । इन्द्र ने विश्वकर्मा होकर द्युलोक को जीत लिया—अमुं लोकं नाभ्यजयत् (इन्द्रः) तं विश्वकर्मा भूत्वाभ्यजयत्—मैत्रायणी संहिता ४.८.१० । इसलिए द्यौ इन्द्र से गर्भिणी कहलाती है—द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी—शतपथ ब्राह्मण, १४.९.४.२१ । विश्वकर्मा के रूप में इन्द्र को त्वष्टा भी कहा गया है—इन्द्रो वै त्वष्टा—ऐतरेय ब्राह्मण ६.१० ।

इन्द्र का सम्बन्ध बारम्बार त्रिष्टुप् से जोड़ा गया है—इन्द्रस्यैवैतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप्—शाङ्खायनारण्यक १.२ । त्रिष्टुप् में ग्यारह अक्षर होते हैं । इसलिए ग्यारह की संख्या इन्द्र से जुड़ी हुई है—इन्द्रा एकादशाक्षरया त्रिष्टुभमुदजयत्—मैत्रायणी संहिता १.११.१० । इसलिए इन्द्र के लिए पुरोडाश एकादश कपाल में तैयार किया जाता है—इन्द्राय मरुत्वते एकादश कपालम् (पुरोडाशं निर्वपेत्)—मैत्रायणी संहिता, २.२.६ । इन्द्र के दिक् दक्षिण है, ऋतु ग्रीष्म है, छन्द त्रिष्टुप् है, साम वृहत् है, स्तोम पञ्चदश है, वर्तनि सप्तदश है, ऋषि सनातन है—दक्षिणा दिग् ग्रीष्म ऋतुरिन्द्रो देवता क्षत्रं द्रविणं त्रिष्टुच्छन्दो बृहत्साम पञ्चदशः स्तोमः स उ सप्तदशवर्तनिः सनातना ऋषिः—मैत्रायणी संहिता, २.७.२० ।

इन्द्र का सम्बन्ध एक ओर वाक् से है—अथ य इन्द्रस्सा वाक्—जैमिनीयोपनिषद् १.११.१.२; वहां दूसरी ओर आदित्य से है—अथ य स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः—शतपथ ब्राह्मण ८.५.३.२ । अन्तरिक्ष का देवता होने के नाते यह रुद्र है—रुद्रास्त्वा त्रैवृहन्तु त्रैष्टुपेन छन्दसेनेन्द्रस्य प्रियं पाथ उपेहि—तैत्तिरीय संहिता ३.३.३.१ ।

इन्द्र के दो घोड़े हैं जिनके द्वारा वह सबका हरण करता है—इन्द्रस्य हरी ताभ्यां हीदं सर्वं हरति—षड्विंश ब्राह्मण १.१ । जैमिनीय ब्राह्मण कहता है कि प्राण और अपान ही इन्द्र के दो घोड़े हैं, जो सबका हरण करते हैं—प्राणापानौ वा अस्य (इन्द्रस्य) हरी तौ हीदं सर्वं हरतः—जैमिनीय ब्राह्मण २.७९ ।

सभी देवता ब्रह्म के रूप हैं, इन्द्र भी ब्रह्म है—तस्माद्धेन्द्रो ब्रह्मेति—कौषीतकि ब्राह्मण ६.१४ ।

## चतुर्दश इन्द्र

इन्द्र के १४ रूप हैं १. सत्य इन्द्र - प्रत्येक पदार्थ का अपने-अपने रूप में कार्य करना सत्य इन्द्र का प्रभाव है, अग्नि का जलना, पानी का बहना, हवा का चलना यह सत्य इन्द्र के कारण ही होता है यह अन्तर्यामी है । २. श्वा इन्द्र—यही आकाश है । यह शून्य में विकसित होता है । ३. विद्युत् इन्द्र—बादलों में जो विद्युत् है, उसका चमकना इसी इन्द्र के कारण है । ४. उत्साह इन्द्र—उत्साह, निश्चय, बल, प्राकर्म यह सब इस इन्द्र का कार्य है । ५. प्रज्ञा इन्द्र—प्राज्ञ द्वारा ही इन्द्रियाँ वस्तु को जानती हैं । यह इन्द्र सब पर शासन करता है । ६. प्रज्ञा प्राण इन्द्र—जब तक यह

है तभी तक शरीर है। इसी के कारण शरीर की सारी क्रियाएं होती हैं। ७. वाक् इन्द्र—मन से सङ्कल्प होता है, प्राण से प्रयत्न और वाणी से विकार। इसी से पदार्थ क्रियाशील होते हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी में वैखरी वाक् इन्द्र की है, शेष तीनों वाक् वायु की हैं। ८. आत्मा इन्द्र—माया के द्वारा यह अनेक रूप धारण करता है। ९. आकाश इन्द्र—वायु के बिना आकाश नहीं होता। यह आकाश ही आकाश इन्द्र कहलाता है। यही समस्त वाणियों का जनक है। यह तीन प्रकार का है—भूताकाश, दिव्याकाश और भावाकाश। भूताकाश भूतों का उपादान कारण है। इससे वायु, तेज, मिट्टी और जल बनते हैं। दिव्याकाश से अग्नि, वायु, सूर्य और आपः बनते हैं। भावाकाश मन है। इसी में प्राण, चक्षु और श्रोत्र से पीडित होकर मन अनेक रूप बनाता है। १०. रूप इन्द्र—यह सूर्य है, जो सात रंग की किरणों द्वारा विविध रूप बनाता है। ११. गति इन्द्र—शब्द, तेज और जल में जो गति है, वह गति इन्द्र के कारण है। १२. द्युति इन्द्र—यह ज्योति रूप है। १३. बल इन्द्र—समस्त बलकार्य इसके ही हैं। १४. आयु इन्द्र—यही आयु देता है।

प्राण इन्द्र एक है। उसी के द्युति, बल और आयु नामक अन्य रूप हैं। इस प्रकार इन्द्र का रूप बहुत व्यापक है। इन्द्र के तीन बन्धु हैं—प्रतिष्ठा, योनि और आशय। ब्रह्म ही प्रतिष्ठा है। ब्रह्म ही योनि है। ब्रह्म ही आशय है। ब्रह्म वेदत्रयी का नाम है। इन्द्र उसी में प्रतिष्ठित है। ब्रह्म में टिका हुआ ही इन्द्र स्थिर रहता है अन्यथा वह उल्लमण कर जाये।

## इन्द्र और गति

मृत पिण्ड रूप सूर्य में रहने वाले अमृत प्राण को इन्द्र कहते हैं। इसी कारण कभी-कभी सूर्य को भी इन्द्र कह दिया जाता है—*एष वै शुक्रः य एष तपति, एष उ इन्द्रः—शतपथ ब्राह्मण ४/५/५/७।*

पहले कहा जा चुका है कि गति दो प्रकार की है—एक प्राग् गति, जो वस्तु से विमुख होती है, दूसरी प्रत्यग् गति, जो वस्तु की ओर झुकी रहती है। इन दोनों ही गतियों को इन्द्र कहा जाता है। यजु में यत् भाग गति है तथा जू भाग स्थिति है। यह गति भाग प्राणात्मक वायु है। इस वायु को इन्द्र कहते हैं—*अयं वाव इन्द्रो योऽयं पवते—शतपथ ब्राह्मण १४/२/१/६।* प्राग् गति को इन्द्र कहते हैं, प्रत्यग् गति को उपेन्द्र कहते हैं। उपेन्द्र का ही दूसरा नाम विष्णु है। वस्तु के मण्डल को साम कहा जाता है। इस साम से वस्तु के केन्द्र की ओर आने वाली गति विष्णु है और केन्द्र से परिधि की ओर जाने वाली गति इन्द्र है। अशनाया के कारण विष्णु बाहर से पदार्थ को केन्द्र में प्रतिष्ठित करता है। इसलिये विष्णु को संसार का पालनकर्ता कहा जाता है। विक्षेपण के द्वारा इन्द्र पदार्थ को केन्द्र से परिधि की ओर फेंकता है इसलिये इन्द्र, जो पुराणों की भाषा में महादेव है, संहार का देवता कहा जाता है। तीसरा देवता ब्रह्मा स्थित रूप है जो पदार्थ की स्थिति को बनाये रखता है। अध्यात्म संस्था में बाल्य अवस्था प्रातः सवन, युवा अवस्था माध्यन्दिन सवन है और वृद्धावस्था सायं सवन है। प्रातः सवन में विष्णु बलवान है, इन्द्र निर्बल है। इस अवस्था में आय अधिक होती है, व्यय कम होता है। माध्यन्दिन में इन्द्र और विष्णु दोनों का समान बल होता है—*उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न परा जिग्ये कतरश्च नैनोः। इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं*

वि तदैरयेथाम् (ऋक्संहिता ६/६९/८) ।

## इन्द्र तथा अन्य देव

सायंसवन में रोम कूपों के बड़ा हो जाने से इन्द्र बलवान् हो जाता है, विष्णु निर्बल । जब तक विष्णु है तब तक ब्रह्मा पदार्थ की स्थिति बनाये रखते हैं । जैसे ही विष्णु पालन कर्म नहीं करते, ब्रह्मा पदार्थ की स्थिति नहीं बना सकते । अतः विष्णु को प्रतिष्ठा की भी प्रतिष्ठा कहा जाता है । इन्द्र प्राग् गति है, विष्णु प्रत्यग् गति है, तो ब्रह्मा सर्वतोदिग् गति है । ब्रह्मा जब इन्द्र से युक्त होते हैं अग्नि कहलाने लगते हैं । इसलिये कहा जाता है ब्रह्मा विष्णु से युक्त होकर सोम बन जाते हैं इसलिये चन्द्रमा ब्रह्मा कहा जाता है । ब्रह्मा से युक्त आगति सोम है, ब्रह्मा से युक्त गति अग्नि है । अग्नि का इन्द्र के साथ सम्बन्ध है । अग्नि विकासशील है, सोम सङ्कोचशील है । इन पाँचों में ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र ये तीनों हृदय है तथा अग्नि सोम पृष्ठ का निर्माण करते हैं ।

सूर्य में इन्द्र और अग्नि दोनों हैं । सूर्य का प्रकाश इन्द्र के कारण है तथा ताप अग्नि के कारण है । सोम जब इन्द्र का अन्न बनता है, तो प्रकाश होता है । यही इन्द्र का भिन्न रूपों में परिणत हो जाना है—रूपं रूपं मधवा बोभवीति । चन्द्रमा में प्रकाश है ताप नहीं, उसमें केवल इन्द्र है अग्नि नहीं । गर्म पानी में केवल अग्नि है, इन्द्र नहीं । क्योंकि जल का अधिष्ठाता वरुण है । वह असुरों का राजा है और इन्द्र का शत्रु है अतः इन्द्र और वरुण दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते ।

वस्तु के तीन रूप हैं—नाम, रूप और कर्म । इनमें रूप के दो भेद हैं—आकार और वर्ण । काला, पीला वर्ण है, चौकोर, त्रिकोण आकार है । आकार को त्वष्टा बनाता है—त्वष्टा वै रूपाणि विकरोति । सूर्य की दृष्टि में सात वर्ण हैं । जब सातों रंग एक बिन्दु पर आ जाते हैं तो श्वेत वर्ण हो जाता है । इन रश्मियों का अधिष्ठाता इन्द्र ही है । मरुत में भी चौथाई भाग इन्द्र का रहता है । सोम के चार भेद हैं—राजा, वाज, ग्रह और हवि । इनमें ग्रह सोम का सम्बन्ध ज्योतिष्टोम से है । यह ग्रह सोम ही इन्द्र का अन्न है । कर्पूर इत्यादि इन्द्र के द्वारा ही आत्मसात् कर लिया जाता है । ३३ देवताओं में इन्द्र ही प्रधान है । इसलिये इन्द्र को सर्व देवता कहा जाता है—नेन्द्राद् ऋते पवने धाम किञ्चन ।

इन्द्र का ऐतिहासिक रूप भी है । विष्वद्वत् से “शयूर्यणावत” पर्वत पृथिवी लोक है । रावी नदी इसी शयूर्यणावत पर्वत से निकलती है । रावी से निषद पर्वत पर्यन्त अन्तरिक्ष लोक है एवं निषद पर्वत से पामीर पर्यन्त स्वर्ग है । पृथ्वी के देवता अग्नि हैं अन्तरिक्ष के वायु और द्युलोक के आदित्य । इन्द्र ने अग्नि को पृथिवी लोक में अपना प्रतिनिधि बनाया । ऋभु भिष्वा और वाज इन्द्र के द्वारा स्वर्ग में बुलाये गये थे । दिलीप, दुष्यन्त आदि राजाओं के भी स्वर्ग में जाने का वर्णन है । इन्द्र सबकी आत्मा है क्योंकि वह सौर अग्नि है । इन्द्र का वरुण से विरोध है । वरुण का ही एक रूप वृत्र है । इसलिये इन्द्र वृत्र से शत्रुता रखते हैं । इन्द्र के प्रभाव से जल दुर्गन्ध रहित रहता है । वृत्र दुर्गन्ध युक्त जल है । दुर्गन्ध युक्त जल को वेन भी कहा जाता है । वेन बहता हुआ पानी है । वृत्र ठहरा हुआ पानी है । ब्रह्मा प्राणमयी वेदसाहस्री का मूल है विष्णु आपोमयी लोकसाहस्री का

मूल है इन्द्र वाङ्मयी वाक्साहस्री का मूल है। स्तोमों की दृष्टि से त्रिवृत् पर्यन्त घनाग्नि है, पञ्चदश पर्यन्त तरल अग्नि है, एकविंश पर्यन्त विरल अग्नि है। त्रिणवपर्यन्त भास्वर सोम है, त्रयस्त्रिंशपर्यन्त दिक्सोम, चतुश्चत्वारिंशत्पर्यन्त इन्द्र है एवम् अष्टाचत्वारिंशत्पर्यन्त ब्रह्मा है। ब्रह्मा यदि मनोमय है और विष्णु अर्थमय है तो इन्द्र क्रियामय है। शुन इन्द्र आकाश में रहने वाला इन्द्र प्राण है जिसे 'शुनं हुवेम मधवानमिन्द्रम्' कहा जाता है। आकाश शून्य प्रदेश नहीं है, बल्कि प्राण से परिपूर्ण है। इन्द्र का बल सह कहलाता है। जितना भी बल कर्म है वह इन्द्र का है—या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत्। देवताओं में भी वर्ण विभाजन है। अग्नि तत्त्व ब्राह्मण है—अग्ने महौ असि ब्राह्मण भारतेति—शतपथ ब्राह्मण १/४/२/२। इन्द्र क्षत्रिय है—क्षत्रं वा इन्द्रः—तै. ब्रा. २/९/६/३। अग्नि अभिगन्ता है, इन्द्र कर्ता है। विज्ञान का सम्बन्ध सौर इन्द्र से है प्रज्ञान का सम्बन्ध पार्थिव इन्द्र से है। प्रज्ञान के दो भाग हैं—प्रज्ञा और सोम। प्रज्ञा-भाग सोम और प्राण भाग इन्द्र है। दिव्य इन्द्र के साथ असुरों का समबन्ध नहीं है। यह दिव्य इन्द्र मधवा कहलाता है।

मरुत इन्द्र से आगे रहते हैं। इन्द्र, राजा है। मरुत् इसकी सेना है। मरुत् इन्द्र की रक्षा करते हैं। अभिप्राय यह है कि वरुण के आप्य प्राणों से जब पदार्थ दूषित होता है तो मरुत् अर्थात् खुली हवा उसे शुद्ध करती है।

इन्द्र आसां नेता वृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।

देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥

—यजुः संहिता १७/४०

इन्द्र पूर्व दिशा के दिग्पाल हैं, वरुण पश्चिमी दिशा के दिग्पाल हैं। तेजोलक्षण ज्योतिर्भाव इन्द्र है, स्नेह लक्षण तमोभाव वरुण हैं। इन्द्र का दूसरा नाम मित्र भी है। यही मित्र और वरुण क्रतु और दक्ष हैं। वरुण से सुरा का सम्बन्ध है, इन्द्र से सोम का सम्बन्ध है। सुरा आसुरी है, सोम दिव्य है। सुरा मलात्मक है, सोम रसात्मक है—सुरा वै मलमन्तानां, पाप्मा वै मलमुच्यते। तस्मात् ब्राह्मणराजन्यौ, वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥—मनुस्मृतिः अन्न में ये दोनों ही भाग रहते हैं।

इन्द्र अमृता वाक् है उससे समस्त आकाश व्याप्त है। भौतिक वाक् को इन्द्रपत्नी कहा जाता है। वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः । वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता । सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी । तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/८/४-४। समस्त विश्व इन्द्र में व्याप्त है, किन्तु वह इन्द्र को व्याप्त नहीं कर सकता।

## इन्द्र का शासन

पृथ्वी का अधिष्ठाता अग्नि है, और द्यौ का अधिष्ठाता इन्द्र है—अग्निगर्भा पृथिवी द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी। देवताओं में इन्द्र शासक है। उसका शासन छः प्रकार का है—उत्तेजन, आक्रमण, स्तम्भन, नियन्त्रण, उत्क्षेपण और उल्कमण। किसी को अपने व्यवहार में लगाना उत्तेजन है। दूसरे की स्वतन्त्रता को छीनकर उसके अन्न पर अपना स्वामित्व बनाना आक्रमण है। दूसरे की गति रोकना स्तम्भन है। किसी को नियत कर्म में लगाना नियन्त्रण है। एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाना उत्क्षेपण है। अपने हृद्ग्रन्थिबन्ध से विच्छेद कर दूसरे स्थान पर ले जाना उल्कमण है।

## इन्द्राग्नि की समष्टि सूर्य

सूर्य, इन्द्र और अग्नि की समष्टि है। इन्द्र प्रकाश का देव है। अग्नि ताप का देव है। चन्द्रमा में केवल इन्द्र है इसलिये वहाँ प्रकाश है ताप नहीं। गर्म पानी में केवल अग्नि है इसलिये वहाँ ताप है प्रकाश नहीं। सूर्य में प्रकाश भी और ताप भी इन्द्र प्रकाश का देवता है तो वरुण अन्धकार का देवता है। इन्द्र का सम्बन्ध पूर्व से है वरुण का सम्बन्ध पश्चिम से है। इन्द्र और वरुण का परस्पर विरोध है। वरुण पानी में रहता है वहाँ प्रकाश का अधिष्ठाता इन्द्र नहीं जा सकता।

## सूर्य की गति स्थिति

सूर्य के सम्बन्ध में दो प्रकार के दृष्टिकोण हैं। प्राकृतिक स्थिति यह है कि सूर्य स्थिर है—*नैवोदेता नास्तमेमेता एकल एव मध्ये स्थाता—छान्दोग्योपनिषद् ३/११/१*। दृश्यमान स्थिति यह है कि सूर्य गतिमान है—*हिरण्ययेन सविता रथेना देवा याति भुवनानि पश्यन्—यजुः संहिता ३३/४३*।

एक तीसरी दृष्टि के अनुसार सूर्य भी परमेष्ठी के चारों ओर घूम रहा है। स्वयं परमेष्ठी भी स्वयम्भू के चारों ओर परिभ्रमण करता है। सूर्य की आयु ४३२००००००० वर्ष है।

## सूर्य के मनोता

सूर्य का वर्ण कृष्ण है। यही कृष्ण सूर्य मृग्यमान होने के कारण कृष्ण मृग कहलाता है। सूर्य कृष्ण है सोम भी कृष्ण है किन्तु सोम की आहुति प्रकाश को जन्म देती है। सूर्य के तीन मनोता हैं—ज्योति, गौ और आयु। ज्योति भाग से तैंतीस देवता उत्पन्न होते हैं, गौ भाग से सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और आयु भाग से भूतात्मा या देही उत्पन्न होता है। मन का सम्बन्ध ज्योति से प्राण का गौ से और वाक् का आयु से है। अग्नि में सोम की आहुति यज्ञ कहलाती है। इसी से सूर्य प्रकाशित होता है। समस्त सृष्टि की उत्पत्ति सूर्य से हुई है—*नूनं जना-सूर्येण प्रसूताः*।

## सूर्य तथा अन्य ग्रह

सूर्य की वाक् का नाम स्वर है। सविता का एक स्वतन्त्र ग्रह है। वह सूर्य से भिन्न है। सूर्य के ऊपर बृहस्पति है, बृहस्पति के ऊपर सविता है और सविता के ऊपर ब्रह्मणस्पति है। सौर मण्डल में सर्वत्र सविता प्राण है। सूर्य के कृष्ण मृग होने के कारण कृष्ण मृग चर्म को त्रयी विद्या माना गया है। कृष्णलोम ऋग्वेद है, नकुल वर्ण वाले लोम यजुर्वेद हैं। सूर्य देव ग्राम घन है। शुक्ल सोम सामवेद।

सूर्य की जो अग्नि पृथिवी का स्वरूप बन जाती है वह गायत्र है। वही अङ्गिरा है। यह गायत्राग्नि पृथिवी से सूर्य की ओर जाती है। यही कृष्ण मृग है। सूर्य के इक्कीस स्तोम पर्यन्त हिरण्यमय मण्डल हैं, तैंतीस पर्यन्त आपोमय मण्डल है और चौतीसवें के बाद वेद मण्डल है। सूर्य से आने वाली रश्मियां सावित्री कहलाती हैं। सूर्य स्वज्योति है। सोम की वाक् इन्द्र भी कहलाती है।



सभी उपग्रह सूर्य की पत्नियों के समान हैं ये सभी उपग्रह पृथिवी कहलाते हैं। उपग्रहों के लिये ग्रह सूर्य द्यौ है। पृथिवी योषा है। *इयं वै पृथिवी योषा—शतपथ ब्राह्मण १४/२/२५*। इन्द्र वृषा है। *इन्द्रो वै वृषा—ताण्ड्य ब्राह्मण ९/४/३*। योषा और वर्षा का भाव ही स्त्री पुरुष का भाव है।

## द्वादश आदित्य

आदित्य की द्वादश अवस्थाएं इस श्लोक में दी गयी है—*इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । अंशुर्विवस्वान् त्वष्टा च सविता विष्णुश्च ॥* अग्नि की विरलावस्था आदित्य है। यह क्षत्र है। इसका नाम इन्द्र है। आदित्य की उपर्युक्त बारह अवस्थाएं विट् रूप है। आदित्य जगती छन्द से वेष्टित है। जगती छन्द में १२ अक्षर हैं। इन्हीं के कारण आदित्य को बाहर अवस्थाओं में परिणत होना पड़ता है।

## इन्द्र

इन्द्र हमारे शरीर का सहोबल है। इसी के आधार पर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का सञ्चार होता है। शरीर में धातुओं का सञ्चार होता है। इसी के आधार पर शरीराग्नि कण्ठतालु आदि से टकराकर वर्ण में बदलती है। प्रज्ञान मन में यह विद्युत बनकर चञ्चलता प्रकट करता है। यही चक्षु में देखने का सामर्थ्य पैदा करता है। आधिदैवत में विद्युत् और सूर्य चन्द्रमा में यही प्रकाश देता है। नमूची प्राण का हनन कर यह वर्षा कराता है। मरुत्वान् के रूप में इसकी चौदह अवस्थाएँ हैं। यह बल तत्त्व है। *या च का च बलकृतिरिन्द्रमैव तत्—निरुक्त । क्षत्रं वा इन्द्रः—कौषीतकी २/८*। जैमिनीय में इसे वाक् से जोड़ा गया है। *अथ ह इन्द्र सा वाक्—जैमिनीय, १/३३/२*।

शतपथ इसका सम्बन्ध विद्युत् से बतलाता है। *स्तनयित्पुरेव इन्द्रः—शतपथ ब्राह्मण ११/६/३/९*। शतपथ में इसे इन्द्रियों से जोड़ा गया है। *मयि इन्द्र इन्द्रियं दधातु—शतपथ ब्राह्मण १८/१/४२*। गोपथ में इन्द्र को मन बताया है। *यन्मनः स इन्द्रः—गोपथ ब्राह्मण ४/११*। इन्द्र के सम्बन्ध में हम पहले विस्तार से लिख चुके हैं।

## धाता

यदि इन्द्र सहोबल है तो धाता प्रतिष्ठा बल है। उसका स्वरूप वषट्कार से होता है। *धाता स उ एव वषट्कारः—ऐतरेय ब्राह्मण, ३/४८*। वषट्कार छः वाक् स्तोमों का नाम है जो ४८ स्तोम पर्यन्त फैले हैं। वषट्कार आलम्बन है। *देवपात्रं वा एष वषट्कारः—शतपथ ब्राह्मण १/७/२/१३*। *प्राणो वै वषट्कारः—ऐतरेय ब्राह्मण-३/४७*। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार वषट्कार प्राण है। यही वस्तु की प्रतिष्ठा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार धाता अग्नि है। *अग्निर्वै धाता—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/३/१०/२*। शतपथ ब्राह्मण में धाता का स्वरूप बताया गया है—*यद् दधत् विदधत् अतिष्ठत् तस्मात् धाता—शतपथ ब्राह्मण-९/५/१/३५*।

**भगः**

पदार्थ की शोभा का कारण भगः है। इसके छः मुख हैं। ऐश्वर्यस्य च समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।। स्त्री, सन्तान, अन्न, वित्त आदि ऐश्वर्य हैं। धर्मों के स्वरूप को धारण करने वाला धर्म है। यश कीर्ति है। शरीर की शोभा श्री है। ज्ञान सदसद् विवेक है। वैराग्य अनासक्तिपूर्वक कर्म है। उनमें ऐश्वर्य आत्मा को आवृत्त कर लेता है, इसलिए कौषीतकि ब्राह्मण (१६/१३) में भगः को अन्धा कहा है—तस्मादाहु अन्धो वै भगः कौषीतकी ब्राह्मण ६/१३। इसका उत्तराफाल्गुन नक्षत्र स्रोत माना जाता है। भगस्य वा एतत् नक्षत्रं यद्युत्तरे फल्गुनेः—तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/१४।

**पूषा**

ज्ञान-क्रिया और अर्थ का विभाजन करने वाला पूषा है—कौषीतकी ब्राह्मण ६/१३। पूषा का सौर - ाग भागधुक है। पूषा भागदुद्योशनं पाणिभ्यां उपविधाता—शतपथ ब्राह्मण १/१/२/१७। नक्षत्र के रूप में यह खेती से जुड़ा है—पूषा रैवत्यगवेति पन्थाम्—तैत्तिरीय संहिता ३/१/२/९। इसका सम्बन्ध पशु-भाव से है क्योंकि यह भौतिक पुष्टि का सूचक है, जबकि भगः श्री का अधिष्ठाता है। पशवो वै पूषा—शतपथ ब्राह्मण ५/२/५/८ पुष्टिवै पूषा—तै. ब्रा. २/७/२/१।

**मित्रावरुणौ :**

खगोल के पूर्व पश्चिम दो भाग हैं। याम्योत्तर रेखा खगोल को दो भागों में बाँटती है। यह "उर्वशी" कहलाती है क्योंकि यह सबसे ऊपर है। अन्तरिक्ष अर्णव समुद्र है इसके अप् में सरण करने के कारण यह अप्सरा कहलाती है। खगोल द्रोणकलश है। इसका पूर्व कपाल मित्र है, पश्चिम कपाल वरुण है। उर्वशी में मित्र और वरुण दोनों का प्राण आता है। जिसके कारण मध्याकाश में मत्स्य नाम का अपूर्व तत्त्व उत्पन्न होता है। दक्षिण भाग में गिरे हुए प्राण से अगस्त्य प्राण तथा उत्तर भाग में गिरे हुए प्राण से वसिष्ठ प्राण उदित होता है। रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक मित्र कहलाता है तथा दिन के बारह से रात्रि के बारह बजे तक वरुण नाम से पुकारा जाता है। प्राण मित्र है। अपान वरुण है, शुक्ल पक्ष मित्र है कृष्ण पक्ष वरुण है, प्रेमाश्रु मित्र है शोकाश्रु वरुण है, आगमन मित्र है गमन वरुण है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है जो शाखा काट दी गयी वह वारुणि है, जो स्वयं गिर पड़ी वह मैत्री है। वरुण्या वा एष या परशुवृण्या अथैषा मैत्री या स्वयं प्रशीर्णा—शतपथ ब्राह्मण ५/३/२५।

**अर्यमा :**

प्रजा का कारण अर्यमा है। अर्यमा ही हमें देने के लिए प्रेरित करता है। अर्यमेति तमाहुः यो ददाति—तैत्तिरीय ब्राह्मण १/१/२/४ (१/१/२/४)। इसी आधार पर अर्यमा को यज्ञ कहा जाता है। यज्ञो वा अर्यमा—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/१६/३। आकाश गङ्गा का प्राण भी अर्यमा कहलाता है। आकाश गङ्गा को अर्यमा का पथ कहा गया है। एषा वा ऊर्ध्वा वृहस्पतेर्दिक् तदेष्ट

उपरिष्ठादर्यम्णः पन्थाः—शतपथ ब्राह्मण ५/५/१/१२ ।

दानशील होने के कारण अर्यमा प्राण के सम्बन्ध से ही आर्यों का नाम पड़ा ।

### अंशु

अंशु का सम्बन्ध दृष्टि से है—चक्षुरेव अंशुः—शतपथ ब्राह्मण ११/५/८/२ । मन और प्रजापति का सम्बन्ध भी अंशु से बताया गया है । मनो ह वा अंशु—शतपथ ब्राह्मण ११/५/९२ ।

### विवस्वान्

अदिति को सर्वव्यापक कहा गया है । अदिति का सम्बन्ध भू-पिण्ड के उस भाग से है जो सूर्य के प्रकाश में रहता है ।

### त्वष्टा

त्वष्टा वस्तु में आकार देता है । वर्ण इन्द्र का काम है, आकार त्वष्टा का काम है । गर्भ में त्वष्टा ही शिशु का आकार बनाता है । छन्द त्वष्टा प्राण ही बनाता है, इसलिए त्वष्टा को वाक् भी कहा जाता है । वाग्वै त्वष्टा—ऐतरेय ब्राह्मण, ६/१० । त्वष्टा रूपाणि विकरोति—तैत्तिरीय ब्राह्मण २/७/२/१ ।

### सविता

सविता एक ग्रह है । यह परमेष्ठी का उपग्रह है । इसकी सत्ता तीसरे द्युलोक में है । यह हमें कार्य के लिए प्रेरित करता है । उषा काल में सविता की सत्ता है । यही गायत्री मन्त्र का उपास्य है । दीपशिखा यदि सविता है तो उसके चारों ओर निकलने वाली रश्मियाँ सावित्री हैं । ये ही जब किसी वस्तु से टकराकर वापस आती है तो गायत्री कहलाती हैं । सविता प्राण प्रत्येक पदार्थ में है ।

### विष्णु

यज्ञ में अन्नाद का अन्न से सम्बन्ध होता है । आगतिधर्मा विष्णु इस सम्बन्ध को कराता है, इसलिए विष्णु यज्ञरूप है । यही उसका विश्वपालकत्व है ।

विष्णु का काम आकर्षण है । उसके चार रूप मुख्य हैं—अशनाया, प्रकृति, यज्ञ तथा देव । इन्द्र जब उल्क्रमण करता है तो रिक्त उदर में अशनाया प्राण उत्पन्न होता है । यह अशनाया प्राण अशीति को खाता है और रिक्त अंश की पूर्ति करता है । इस प्रकार विष्णु ब्रह्मा की स्थिति की रक्षा करता है । विष्णु के चक्र की तीन धातुएं हैं—उक्थ, अर्क और अशीति । सूर्य अशन को उक्थ से ग्रहण करने के लिए उदित होता है वह ब्रह्मा में अशीति का आधान करता है । उत्थित विष्णु ही सूर्य है । उक्थ आत्मा है, अर्क प्राण है । अशीति उक्थ में आकर ब्रह्म रूप हो जाती है । यह अशीति सूर्य में आहुति है, इस आहुति को ग्रहण करने वाला यज्ञ विष्णु है । सङ्क्षेप में विष्णु का स्वरूप यह होगा—अशनायामय अक्षरपुरुष अमृतविष्णु है । प्रकृति का आपोमय परमेष्ठी ब्रह्मविष्णु

है, देवों में लक्ष्मीमय आदित्य शुक्रविष्णु है। सोमरूपी अन्न प्रजापति यज्ञविष्णु है। यह पुर है। विष्णु के द्वारा नानात्व का उपादान होता है क्योंकि यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं। तीन, पन्द्रह और इक्कीस ये तीन स्तोम विष्णु के तीन विक्रम हैं। यही तीन लोक है, यही तीन अग्नि है। विष्णु एक प्रकार का है उसकी महिमा अनेक प्रकार की है। ब्रह्मा से ब्राह्मण वीर्य, इन्द्र से क्षत्रिय और विष्णु से वैश्य वीर्य जुड़ा है।

प्रत्येक परिवर्तनशील पदार्थ में वृद्धि और क्षय होता है तथापि उस पदार्थ की प्रत्यभिज्ञा बनी रहती है। इस प्रत्यभिज्ञा का कारण प्रतिष्ठा तत्त्व है। यही ब्रह्मा है। इन्द्र आत्मभूत द्रव्य में से उल्लमण द्वारा जब रिक्तता पैदा करता है तो उस रिक्तता की पूर्ति विष्णु अशनाया प्राण के द्वारा अशीति को खाकर करता है और ब्रह्मा की स्थिति की रक्षा करता है। ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु ये तीनों अक्षरब्रह्म की तीन कलाएं हैं।

मनुष्य जो अन्न लेता है, इन्द्र उस अन्न को पचाता है। अन्न के पच जाने पर पुनः क्षुधा लगती है। इस क्षुधा की पूर्ति विष्णु अन्न द्वारा करता है। यह देह में चलने वाला यज्ञ है। इससे जुड़ा होने के कारण विष्णु को यज्ञप्रजापति कहा जाता है।

विष्णु की तीन धातुएं हैं—उक्थ, अर्क और अशीति। उक्थ आत्मा है, अर्क प्राण है, अशीति आहुति है। इन्द्र विक्रम करता है, विष्णु आकर्षण करता है, विष्णु का आकर्षण पाँच प्रकार का है—१. लक्ष्म, २. भाग्य, ३. कामकार, ४. गार्ध्य, ५. आहुति। इन पाँच प्रकार के आकर्षणों के कारण विष्णु पाङ्क्त कहलाता है। इनमें लक्ष्म का अर्थ है—मनुष्य, पशुपक्षियों की आकृति और प्रकृति में भेद करना। विष्णु के द्वारा जिस प्रकार का अन्न, जिस प्राणी में आहुत होता है उसी प्रकार की उसकी आकृति और प्रकृति हो जाती है; कोई दो पायों वाला मनुष्य बनता है, कोई चौपाया पशु, कोई दानी होता है, कोई कृपण। भाग्य का अर्थ है—जिसकी आशा न हो उस पदार्थ का आकस्मिक आ जाना। कामकार का अर्थ है इच्छा का होना या न होना। गार्ध्य का अर्थ है—लोभवृत्ति का उत्पन्न हो जाना तथा आहुति का अर्थ है—जो अन्न आये उसका आत्मसात् होना। इस प्रकार विष्णु की इन पाँच आकर्षण कलाओं के कारण पदार्थों में नानात्व उत्पन्न होता है। यही विष्णु के यज्ञ के अनेक रूप है। यज्ञों की अनेकता अर्क के भेद से होती है, यद्यपि उक्थ एक ही है। ऊर्ध्व लोक में विष्णु अमृत रूप है।

### ब्राह्मण ग्रन्थों में आदित्य

व्युत्पत्ति की दृष्टि से अदिति के पुत्र आदित्य कहलाते हैं, किन्तु जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार आदित्य का आदित्यत्व यह है कि वह सब प्राणियों से आदान करता है—*तद्यत् एतेषां भूतानामादत् तदादित्यस्याऽऽदित्यत्वम्—जैमिनीय ब्राह्मण २.२६*। अग्नि, वायु आदित्य में आदित्य का सम्बन्ध द्युलोक से है—*सूवरित्यादित्यः—तैत्तिरीयारण्यक ७.५.२*। इसी प्रकार क्रमशः सामवेद की उत्पत्ति आदित्य से हुई—*सामवेद आदित्यात्—जैमिनीय ब्राह्मण १.३५७*। स्वः सामवेद का रस है, वही द्यौ है *स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत् (प्रजापतिः) सोऽसौ द्यौरभवत् तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्योऽभवत् रसस्य रसः—जैमिनीयोपनिषद् १.१.१.५*। गोपथ ब्राह्मण में आदित्य को साम

का देवता बताया है जिसका स्थान द्यौः है और छन्द जगती है—*साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागताच्छन्दो द्यौः स्थानम्—गोपथ ब्राह्मण १.१.२९* । इसी क्रम में आदित्य का तृतीय सवन माना गया है—*वसवः प्रातःसवनं रुद्रा माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृतीयसवनम्—शतपथ ब्राह्मण १४.१.१.१५* । वाक् का सम्बन्ध मुख से है, प्राण का वायु से, तो आदित्य का सम्बन्ध चक्षु से है—*अथ यद्यत् तत् चक्षुरासीत् स आदित्योऽभवत्—जैमिनीयोपनिषद् २.१.२.३* । आदित्य चक्षु में प्रतिष्ठित है—*आदित्यश्चक्षुषि प्रतिष्ठितः—शाङ्ख्यायनारण्यक १०.१* । चक्षु के होम करने से ही आदित्य उत्पन्न हुआ—*चक्षुरेव स तत्स्वमजुहोत् अमुमेवादित्यम्—काठक संहिता ६.१* ।

सभी देवताओं की भाँति आदित्य भी प्राण है—*असौ वा आदित्यः प्राणः—तैत्तिरीय संहिता ५.२.५.४* । आदित्य जो आदान करता है वह प्राण के कारण ही होता है—*प्राणा वा आदित्याः प्राणा हीदं सर्वमाददते—जैमिनीयोपनिषद् ४.२.१.९* । प्राण ही तपता है—*प्राणो ह्येष यः एष (आदित्यः) तपति कौषीतकि ब्राह्मण २.२.१.३* । आदित्य का सम्बन्ध एकविंशशतोम से है—*असावादित्य एकविंशः—कपिष्ठल कठ संहिता, ४१.२* । जैमिनीय ब्राह्मण में तथा काठक सङ्कलन में भी आदित्य का सम्बन्ध इक्कीस से जोड़ते समय बारह मास, पाँच ऋतु, तीन लोक के बाद आदित्य को इक्कीसवां माना है—*एकविंशो वाऽस्य भुवनस्य विषुवान् द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः—जैमिनीय ब्राह्मण २.३८९* ।

आदित्य सूर्य है—*असौ वा आदित्यः सूर्यः—शतपथ ९.४.२.२३* । इस सूर्य के उदय को उद्ग्राभ और अस्त को निग्राभ कहा जाता है—*असा आदित्य उद्यन्नुद्ग्राभ एष निग्नोचन् निग्राभः—तैत्तिरीय संहिता ४.५.६, ६-७* । यही आदित्य का गमनागमन है—*असौ आदित्यः प्राङ् चैति प्रत्यङ् च—काठक संहिता २०.४* । आदित्य उदय होता है तो यजमान का उदय हो जाता है, आदित्य अस्त होता है तो शत्रुओं का निग्रह हो जाता है—*असौ वा आदित्य उद्ग्राभ एष निग्राभ उद्यन्वा एतद् यजमानमुद्ग्रह्णाति निग्नोचन्नस्य भ्रातृव्यं निग्रह्णाति—मैत्रायणी संहिता ३.३.८* । वस्तुस्थिति यह है कि सूर्य न कभी उदित होता है और न अस्त होता है इसलिए यजमान का पतन कभी भी नहीं होता—*स वा एष (आदित्यः) न कदाचनस्तमेति नोदेति... स वा एष न कदाचन निग्नोचति—ऐतरेय ब्राह्मण ३.४४* ।

अग्नि को ऋत और सूर्य को सत्य कहा जाता है—*अयं वा अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यम्—शतपथ ६.४.४.१०* । आदित्य को बारम्बार सत्य कहा है—*असावादित्यः सत्यम्—तैत्तिरीय संहिता २.१.११.१* । इस सबका यही अभिप्राय है कि सूर्य में केन्द्र है और जिस पदार्थ में केन्द्र हो वही सत्य है । आदित्य विश्व के केन्द्र में है इसलिए आदित्य को हृदय कहा गया है—*असौ वा आदित्यो हृदयम्—शतपथ ९.१.२.४०* ।

आदित्य का सम्बन्ध जगती छन्द से है—*जागतो असावादित्यः—जैमिनीय ब्राह्मण २.३६* । जगती के बारह अक्षर हैं और आदित्य भी बारह हैं—*द्वादश आदित्या द्वादश अक्षरा जगती—तैत्तिरीय संहिता, ३.४.९.७* । जगती का काम प्रजनन है । आदित्य भी प्रजनन का अधिष्ठाता

है—प्रजननं जगती योऽसावादित्यः—**जैमिनीय ब्राह्मण** २.३६। वर्ष के तीन सौ साठ दिन के आधार पर आदित्य की तीन सौ साठ रश्मियाँ मानी गई हैं—षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यस्य रश्मयः—**शतपथ** १०.५.४.४। जो नचिकेता अग्नि का चयन करता है वह आदित्य के सायुज्यको प्राप्त होता है। यही स्वर्ग है—अग्निमयो ह वै पुनर्नवो भूत्वा स्वर्गं लोकमेति आदित्यस्य सायुज्यम् योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते—**तैत्तिरीय ब्राह्मण** ३.११.१०.४। अग्नि और आदित्य ही दो देवता हैं जिनसे यजमान स्वर्ग में जाता है—अग्निश्च ह वा आदित्यश्च रौहिणावेताभ्यां हि देवताभ्यां यजमानाः स्वर्गं लोकं रोहन्ति—**शतपथ** १४.२.१.२। अग्नि और आदित्य के बीच तादात्म्य सम्बन्ध भी बताया गया है—असौ वा आदित्य एषोऽग्निः—**शतपथ** ६.३.१.२९। अन्यत्र आदित्य का तादात्म्य इन्द्र से बताया है—असौ वा आदित्य इन्द्रः—**तैत्तिरीय संहिता** १.७.६.३। आदित्य को ब्रह्म भी बताया है—असौ वा आदित्यो ब्रह्म—**मैत्रायणी संहिता** २.५.७.११।

आदित्य का सब ऋतुओं से सम्बन्ध है। आदित्य का उदित होना वसन्त है। सूर्य का ऊपर चढ़ जाना ग्रीष्म है। दोपहर वर्षा है। अपराह्न शरदू है। अस्त हो जाना ही हेमन्त है—आदित्यस्त्वैव सर्वऽऋतवः। यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा संगवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनोऽथ वर्षा यदापराह्नोऽथ शरद्घदैवास्तमेत्यथ हेमन्तः—**शतपथ** २.२.३.९।

द्युलोक का देव होने के नाते आदित्य यश का अधिष्ठाता है—आदित्या एव यशः—**गोपथ** १.५.१५। पशुओं में गौ का सम्बन्ध आदित्य से है—गावो वा आदित्याः—**ऐतरेय ब्राह्मण** ४.१७। आदित्य यज्ञ का केन्द्र है—स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः—**शतपथ** १४.१.१.६।

आदित्य का अग्नि से गहरा सम्बन्ध है ऊपर हम कह चुके हैं कि शतपथ ब्राह्मण में आदित्य को ही अग्नि बताया गया है। मैत्रायणी संहिता कहती है कि अग्नि रात्रि है, आदित्य दिन है—अग्निर्वै रात्रिः आदित्योऽहः—**मैत्रायणी संहिता** १.५.९। मैत्रायणी संहिता में आदित्य और अग्नि का तादात्म्य बताते हुए कहा गया है कि—असौ वा आदित्यो अग्निर्वसुमान्—**मैत्रायणी संहिता**, २.१.२। कौषीतकि ब्राह्मण में अग्नि को आदित्यों का होता बताया गया है—तेषां नः (आदित्यानामग्ने) त्वं होतासि—**कौषीतकि ब्राह्मण**, ३०.६।

देवों में आदित्य और पितरों में अङ्गिरस का भी परस्पर सम्बन्ध है—(जैमिनीय ब्राह्मण) २.११७।

आपः को आदित्य को आयतन बताया है—आपो वा अमुष्य तपत आयतनम्—**तैत्तिरीय आरण्यक** १.२२.३।

आदित्य को बारम्बार अश्व बताया गया है—एष वा अश्वो मेध्यो य एष (आदित्यः) तपति—**शतपथ** ३.१.८.१। आदित्य श्वेत अश्व है—ते (आदित्याः) अश्वं श्वेतं दक्षिणा नित्युः—**कौषीतकि ब्राह्मण** ३०.६। सूर्य ही मेध्य अश्व है इसलिए सूर्य को अश्वमेध भी कहा गया है—असौ आदित्यो अश्वमेधः—**तैत्तिरीय संहिता** ५.७.५.३।

## ऋषि

हम प्रायः ऋषि शब्द से अलौकिक ज्ञान सम्पन्न व्यक्तियों को समझते हैं किन्तु वेद में ऋषि शब्द केवल व्यक्तियों को ही इङ्गित नहीं करता। ऋषि शब्द के चार अर्थ हैं—१. असल्लक्षण ऋषि, २. रोचनालक्षण ऋषि, ३. दृष्टिलक्षण ऋषि, ४. वक्तृलक्षण ऋषि। इनमें अन्तिम दो व्यक्ति हैं, प्रथम प्राण है, तथा द्वितीय तारा है।

१. असल्लक्षण ऋषि—शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पहले असत् ही था। प्रश्न हुआ कि असत् क्या है? उत्तर मिला कि असत् का अर्थ है—ऋषि। फिर प्रश्न हुआ कि ऋषि कौन है? उत्तर मिला प्राण। यद्यपि पितर और देवता भी प्राण हैं, किन्तु ऋषि शुद्ध प्राण है इसीलिए मनु ने ऋषियों से पितरों की और पितरों से देवताओं की उत्पत्ति मानी है। ऋषि शुद्ध प्राण होने के कारण एकजातीय है, देव प्राणों का समुदाय होने के कारण नानाजातीय प्राण समुदाय है।

### प्राण असत्

ऋषि को हमने असत् कहा - यह ब्रह्म का स्वरूप है। ब्रह्म के शेष दो रूप सद और सदसद् हैं। असद् प्राण है, तो सद वाक् है, सदसद् मन है। ये तीनों मिलकर ही कार्य ब्रह्म कहलाते हैं। अव्यय पुरुष की पाँच कलाओं में से इन तीन का सृष्टि में योगदान है, आनन्द और विज्ञान का मुक्ति में योगदान है। इनमें प्राण से अक्षर पुरुष का और वाक् से क्षर पुरुष का विकास होता है। प्राण यत् है वाक् जू है। यत् और जू मिलकर यजुः बनता है। ये प्राण और वाक् प्रलय के समय भी शेष रहते हैं—इसलिए 'शेषे यजुः शब्दः' कहा जाता है।

प्राण को असत् इसलिए कहा जाता है कि सत् वह है जिसमें प्राण रहता है और क्योंकि प्राण में प्राण नहीं रहता इसलिये प्राण को असत् कहते हैं। इसी प्रकार वैशेषिक द्रव्य, गुण और कर्म को सत् कहते हैं क्योंकि इनमें सत्ता रहती है किन्तु सत्ता में सत्ता नहीं रहती इसलिए सत्ता को सत् नहीं कहा जा सकता।

### विश्व के पाँच पर्वों में प्राण

स्वयम्भू के प्राण ऋषि हैं, परमेष्ठी के प्राण पितृ है, सौर प्राण देव है, चान्द्र प्राण गन्धर्व और पार्थिव प्राण वैश्वानर है। स्वयम्भू में ज्ञान ज्योति है, सूर्य में स्वः ज्योति है। स्वयम्भू के प्राण ऋषि हैं और सूर्य के प्राण देव। शेष तीनों पुण्ड्रियों में ज्योति नहीं है, इसलिये परमेष्ठी चन्द्रमा और पृथ्वी के प्राण असुर प्राण कहलाते हैं। ऋषि प्राण मौलिक हैं। ये अनेक हैं। जिनके समन्वय से पितृ प्राण उत्पन्न होते हैं वे पितृ प्राण भी अनेक प्रकार के हैं। उनके समन्वय से देवता प्राण उत्पन्न होते हैं। देवता और असुर दोनों परमेष्ठी की सन्तान हैं। देवता अग्नि प्रधान हैं, असुर आप्य प्रधान हैं। इन दोनों का संघर्ष ही देवासुर संग्राम है। पितृप्राण सौम्य है।

### ऋषि मूल प्राण

ये ऋषि प्राण अनेक प्रकार के हैं—विरूपास इद्ऋषयस्त इद्रम्भीरवेपसः—ऋक् सं.

१०/६२/५। प्राणात्मक ऋषि तीन रूप में समझे जा सकते हैं (१) आधिदैविक स्तर पर मनु तत्त्व हिरण्यगर्भ मण्डल के केन्द्र में है और उससे ही ऋषि रश्मि रूप में व्याप्त है। हिरण्यगर्भ मण्डल के ये मानव प्राण १० भागों में विभक्त होकर विराट् पुरुष का स्वरूप बनाते हैं। (२) आध्यात्मिक क्षेत्र में ये प्राण मन को आधार बनाकर पूरे शरीर में व्याप्त रहते हैं। (३) आधिभौतिक स्तर पर अंगिरोऽग्नि को आधार बनाकर ये प्राण पदार्थ में व्याप्त रहते हैं—तेऽअंगिरस सूनवः, तेऽग्नेः परि जज्ञिरे—ऋक् सं. १०/६२/५। ऋषि प्राण से ही पञ्च तन्मात्राएं धातु वर्ग, तेज, प्रज्ञा, इन्द्रियाँ, कर्म, पितृ, देवता तथा असुर इन सबका उदय होता है।

### सप्तर्षि

ऋग्वेद का एक मन्त्र है जिसमें कहा गया है कि ऋषियों में षड् यम अर्थात् युग्म रूप में है तथा एक सातवाँ एकाकी है।

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडित् यमा ऋषयो देवजा इति।

तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥

(ऋक्. १/२६४/१५)

इस मन्त्र का आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक तीनों ही प्रकार का अर्थ सम्भव है। माधवाचार्य ने दो-दो मास की छः ऋतुओं को युग्म में विचरण करने वाला माना है तथा अधिक मास को एकाकी विचरण करने वाला सातवाँ मास माना। यह अधिदैव अर्थ हुआ। अध्यात्म में दो नेत्र, दो कान तथा दो नासिका ये छः प्राण युग्म हैं तथा सातवाँ मुख एकाकी है। आधिभौतिक में सात ताराओं में छः युग्म रूप में है तथा एक अकेला है। अध्यात्म का विवेचन अधिक विस्तार से भी किया जा सकता है।

अध्यात्म ऋषि चार गुहाओं में हैं—१. शिरोगुहा, २. उरोगुहा, ३. उदरगुहा, ४. वस्तिगुहा। इनमें प्रत्येक में सात सात प्राण हैं—दो द्वन्द्व रूप में एक अकेला। विस्तार हम पहले भी दे चुके हैं—

१. शिरोगुहा—दो कान, दो आंख, दो नासिका एक मुख। इनके केन्द्र में ब्रह्मरन्ध्र है जो ज्ञानशक्ति देता है।
२. उरोगुहा—दो बाहु, दो फुप्फुस, दो स्तन युगल रूप में है तथा इनके केन्द्र में कण्ठकूप है जो पराक्रम देता है।
३. उदरगुहा—यकृत और प्लीहा से अमाशय और पक्वाशय दो, वृक्क दो तथा नाभि एक। इनके केन्द्र में हृदय है जो अन्न को सङ्ग्रह तथा विभाजन की शक्ति देता है।
४. वस्तिगुहा—दो पाँव, मूत्र और वीर्य के दो छिद्र, दो अण्ड कोष तथा गुदा। इनके केन्द्र में नाभि है जो शरीर के कर्म को चलाने वाली उत्सर्ग शक्ति देती है।

शतपथ ब्राह्मण में प्रसिद्ध ऋषियों का विवेचन स्पष्टतः प्राणों के रूप में है तथा उन प्राणों के



पृथक्-पृथक् कर्म भी बताये गये हैं—

१. वसिष्ठ मुख्य प्राण है। यह प्राण सब इन्द्रियों को शरीर में वास देता है। बिना प्राण के कोई इन्द्रिय नहीं ठहर सकती।  
 प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः । यद्वैनु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः ।  
 अथो यद् वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः ॥—शतपथ, ८/१/१/६
२. दूसरा प्राण भरद्वाज है। यह मन है। मन का निर्माण वाज अर्थात् अन्न से होता है।  
 मनो वै भरद्वाज ऋषिः । अन्नं वाजः । यो वै मनो विभर्ति ।  
 सोऽन्नं वाजं भरति । तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः ।—शतपथ, ८/१/१/६
३. चक्षु जमदग्नि ऋषि है। जमदग्नि जगमत् है। जगमत् का अर्थ है जिसने जगत् को जान लिया। चक्षु जगत् को देखता है। इसलिये जमदग्नि कहलाता है। चक्षुर्वै जमदग्निरुऋषिः ।  
 यदनेन जगत्पश्यति, अथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्नि ऋषिः—(शतपथ, ८/१/२/३)
४. श्रोत्र विश्वामित्र है। कान से हम जिसकी बात सुनते हैं, वह हमारा मित्र हो जाता है। इसलिये श्रोत्र ही विश्वामित्र है। श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः । यअनेन सर्वतः शृणोति । अथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति । तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्र ऋषिः (शतपथ, ८/१/२/६)
५. वाक् विश्वकर्मा है क्योंकि उसने ही सब संसार बनाया है। वाग्वै विश्वकर्म ऋषिः वाचहींद सर्वं कृतम् । तस्माद् वाग् विश्वकर्म ऋषिः (शतपथ, ८/१/२/९)

### ऋषि-कर्म

शास्त्रों में इन सब ऋषियों के अलग-अलग कार्य दिये हैं—१. अङ्गिरा प्राण से “कर्मप्रवणता” उत्पन्न होती है। जिसका अङ्गिरा प्राण मूर्च्छित रहता है, वह सर्वथा अकर्मण्य, आलसी बना रहता है। २. वसिष्ठ प्राण से “ओजस्विता” का उदय होता है। जिसका वसिष्ठ प्राण मूर्च्छित रहता है, उसका मुख कान्तिहीन, उदासीन रहता है। ३. अत्रिप्राण से “अनसूया” वृत्ति का उदय होता है। जिनमें अत्रिप्राण मूर्च्छित रहता है, वह सदा दूसरों की निन्दा किया करता है, परदोषदर्शन का अनुगामी बना रहता है। ४. पुलस्त्यप्राण से “घातक” वृत्ति का साम्राज्य रहता है। ५. क्रतुप्राण से “अध्यवसाय” वृत्ति जागृत रहती है। ६. दक्षप्राण “व्यवसाय बुद्धि” का प्रवर्तक बनता है। ७. कश्यपप्राण “पुरन्धिता” तथा “प्रजावात्सल्य” का प्रवर्तक है। जिसका कश्यपप्राण मूर्च्छित रहता है, वह न तो प्रजासन्तति का ही पात्र बनता है, न उसकी वृत्ति में वात्सल्य का ही उदय होता है। ८. विश्वामित्रप्राण से “आयुःस्वरूपरक्षा”, तथा दृढ़ता का उदय होता है। ९. भृगुप्राण से “विद्याप्रवणता” का आविर्भाव होता है। १०. अगस्त्यप्राण से “परोपकारवृत्ति” जागृत रहती है। ११. मरीचिप्राण से “स्वेदोत्पत्ति, तथा स्वभावमार्दव” का उदय होता है। इन प्राणों के सन्निवेशतारतम्य से पदार्थों में यथेच्छ परिवर्तन किया जा सकता है।

### रोचनालक्षण ऋषि :

प्रसिद्ध है कि आकाशमण्डल में सप्तर्षि मण्डल है। आकाश में तारामण्डल भी ऋषि रूप में जाना जाता है। पूर्व में मरीचि है। पश्चिम में अङ्गिरा है। इन दोनों के मध्य में अरुन्धती के साथ वसिष्ठ है। अङ्गिरा के समीप अत्रि और इसके आगे पुलस्त्य, पुलह और क्रतु है। मरीचि के निकट वसिष्ठ, वसिष्ठ के निकट अङ्गिरा, अङ्गिरा के निकट अत्रि और उसके अनन्तर पुलस्त्य और क्रतु हैं। रोचना लक्षण ऋषियों को आधार बनाकर अनेक ऋचाएँ वैदिक साहित्य में मिलती हैं। ऋग्वेद में एक ऐसी ही कथा का सङ्केत है। प्रजापति के सोमयज्ञ में मित्रावरुण का रेतस् उर्वशी अप्सरा को देखकर खलित हुआ। जो रेतस् कलश में गया वह मत्स्यऋषि बना, जो उत्तरभाग में गिरा वह वसिष्ठ बना और जो दक्षिण में गिरा वह अगस्त्य बना।

विद्युतो ज्योतिः परि सज्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।

तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजम्भार ।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः ।

द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।

यमेन ततं परिधि वयिष्यन्त्सप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः ॥

सत्रे ह जाताविषिता नामोभिः कुम्भे रेतः सिपिषचतुः समानम् ।

ततो ह मान उद्वियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥

(ऋक् सं. ७ मं. ३३ सू./१०-११-१२-१३ मंत्र)

ऐसे स्थलों पर दन्तकथाओं का प्रतीकात्मक अर्थ होता है। खगोल को बाँटने वाली रेखा याम्योत्तर वृत्त है यही रेखा उर्वशी कहलाती है। याम्योत्तर वृत्त के तीन सौ साठ वृत्त हैं इन सब को अप्सरा कहा जाता है। ये अप्सराएँ पाँच ऋतुओं के सम्बन्ध से दस हैं। ये वृत्त आपोमय समुद्र में सञ्चरण करने के कारण अप्सराएँ कहलाते हैं। इन वृत्तों से दिशा - उपदिशाओं का विभाजन होता है। अन्तरिक्ष में दिक्सोम व्याप्त है—पुञ्जिकस्थला च, क्रतुस्थला चाप्सरसौ इति दिक् चोपदिशा चति स्माह माहित्थिः—शतपथ ब्रा. ८/६/१/१६। यह सोम राजा है, अप्सरा उसकी प्रजा है—सोमो वैष्णवो राजेत्याह । तस्याप्सरसो विशः—शतपथ ब्राह्मण, १३/४/३/८। पाँच ऋतुओं से जुड़ी दस अप्सराएँ निम्न हैं—

१. पुञ्जिक स्थला	२. क्रतुस्थला
१. मेनका	२. सहजन्या
१. प्रम्लोचन्ती	२. अनुम्लोचन्ती
१. विश्वाची	२. घृताची
१. उर्वशी	२. पूर्वचिति

उर्वशी अर्थात् याम्योत्तर वृत्त अद्यतन-अनद्यतन का विभाजन कररता है। रात्रि के बारह बजे

से दिन के बारह बजे तक अद्यतन काल है जिसे आजकल हम Anti-meridian (A.M.) लिखते हैं। दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक अनद्यतन काल है जिसे हम Past-meridian (P.M.) लिखते हैं। अहोरात्र का विभाजन दो प्रकार से होता है। सूर्योदय और सूर्यास्त से, दिन-रात का विभाजन एक प्रकार है। मध्यरात्रि से सौरप्राण जाने लगता है। मध्याह्न के बाद सौरप्राण जाने लगता है। अहोरात्र के विभाजन का एक यह भी प्रकार है। अद्यतन काल में मित्रप्राण रहता है। यह पूर्वकपाल है। अनद्यतन काल में वरुण प्राण रहता है। यह पश्चिमकपाल है। उर्वशी दोनों की विभाजन रेखा है, इसलिए दोनों से जुड़ी है। इसके पूर्व में मित्र प्राण अङ्गिरस हैं, जो आग्नेय है। पश्चिम में वरुण प्राण भार्गव है जो आप्य है। इन दो प्राणों के सम्पर्क से कुम्भ के उत्तर भाग में वसिष्ठ प्राण का जन्म होता है, जो सोम - प्रधान है। वसिष्ठ प्राण पानी को मिट्टी में बदलता है इसलिए उत्तर दिशा में भू-भाग बढ़ता जाता है। कुम्भ के दक्षिण में आग्नेय अगस्त्य प्राण रहता है। इसका काम पानी को सुखाना है। इसलिए दक्षिण के पर्वत घने एवं काले होते हैं। इस प्रकार वसिष्ठ मिट्टी को बढ़ाने वाले प्राण हैं। मत्स्य मिट्टी के रक्षक हैं। अगस्त्य मिट्टी को संतत बनाकर घनरूप प्रदान करने वाले हैं। इस प्रकार रोचना लक्षण ताराओं में भी ऋषि तत्त्व उपस्थित है। मत्स्य, वसिष्ठ और अगस्त्य तीनों का जन्म कुम्भ से हुआ है इसलिए इन्हें कुम्भोद्भव कहा जाता है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि यहाँ कुम्भ का अर्थ खगोल है।

वस्तुतः नक्षत्रविद्या के आधार पर अनेक कथायें मिलती हैं। एक अन्य कथा है कि एक बार प्रजापति अपनी पुत्री के पीछे दौड़े, पुत्री हरिणी बनकर भागी। देवताओं ने इस कार्य को अनुचित समझा। उन्होंने अपने घोरतम भाग से रुद्र देवता को जन्म दिया। उन्होंने रुद्र से चाहा कि प्रजापति को बाँध दे, बदले में उसे पशुपति होने का वरदान दिया। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है कि पशुपति ने प्रजापति को बाँधा, प्रजापति का मस्तक कट गया। उसे ही मृग कहा जाता है। यह मृग ही मृग-शिरा नक्षत्र है। रुद्र मृगव्याध है। रोहिणी प्रजापति की दुहिता है। और त्रिकाण्ड नक्षत्र रुद्र के हाथ से निकला हुआ शर है।

कृतिका नक्षत्र के पूर्व में लुब्धक नक्षत्र है, जिसके पश्चिम तथा उत्तर में चन्द्रमा तथा श्याव-शबल नामक दो पुनर्वसु नक्षत्र हैं। कृतिका के पूर्व दिशा में रोहिणी नक्षण है, जो रक्त वर्ण का है। रोहिणी नक्षत्र के ईशान कोण में ब्रह्म हृदय नक्षत्र है, जो प्रजापति का मस्तक है। उसके निकट तीन तारे रुद्र के शर हैं। रोहिणी के पूर्व अग्निकोण की ओर लुब्धक नामक नक्षत्र है। इस लुब्धक में समस्त नक्षत्रों का सार है, अतः इसे पशुपति कहा जाता है। इस प्रकार आकाश में भी सप्त ऋषि मण्डल है, जिसका ध्रुव से सम्बन्ध है। ध्रुव एक विद्युत प्राण है, जो विष्णु की परिक्रमा करता है। इसकी उपासना से समस्त सम्पदा मिलती है। जज्ञानः सप्तमातृभिमेधामाशासत श्रिये अयं ध्रुवो रयीणमचिकेतदा सामसंहिता पृ. २/१।

आधिभौतिक अर्थ में भृगु, अङ्गिरा और अत्रि का अर्थ शतपथ ब्राह्मण ने स्पष्ट दिया है। भृगु का अर्थ है ज्वाला, अङ्गिरा का अर्थ है अङ्गार, अत्रि पारदर्शिता को रोकता है। यदि अंगारों के बुझ जाने पर उन्हें पुनः जला दिया जाये तो वे वृहस्पति कहलाता हैं।

अर्चिषि भृगुः सम्बभूव, अङ्गारेष्वङ्गिरा सम्बभूव ।

अथ ददङ्गारा अवशान्ताः पुनरुददीप्यन्त, अथ बृहस्पतिरभवत् ।

(ऐतरेय ब्राह्मण, ३/३४)

### द्रष्टृलक्षण ऋषि

ऋषि का अर्थ तत्त्वद्रष्टा है विद्या, ब्रह्म और वेद तीनों समानार्थक हैं। विद्या का अर्थ है पदार्थों का परस्पर कार्यकारणभाव जानना। यही ब्रह्म और वेद का भी अर्थ है किन्तु जो वर्तमान में जाना जा रहा है वह ब्रह्म है, जो पहले जान लिया गया, वह विद्या है और शब्द के द्वारा होने वाला ज्ञान वेद है। ऋषि वस्तुतः तत्त्व के द्रष्टा है। ब्रह्म विद्या का नाम वेद है। ब्रह्म यज्ञ के द्वारा अपने को अनेक रूपों में परिणत कर लेता है। यज्ञ विज्ञान है तथा यज्ञ को धर्म भी कहा गया है। वेद में धर्म तथा विज्ञान का यही समन्वय है। यज्ञ में सब देवता आ जाते हैं। अतः देवता-विज्ञान भी वेद है। देवताओं में मुख्य प्रजापति है अतः प्रजापति-विज्ञान भी वेद है। सूर्य-विज्ञान भी वेद है। वेद में सारा ज्ञान भी निहित है। जिन्होंने इस ज्ञान-विज्ञान का उपदेश दिया है, ऋषि है। इन्होंने मन्त्रों की रचना की और विज्ञान का दर्शन किया। ईश्वर के अनुग्रह से इन्हें परोक्ष विषयों का ज्ञान हुआ।

यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवास्तपता श्रमेण ।

तां देवां वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके ॥

पूर्वकल्प में इन ऋषियों को जो संस्कार था उसी से उन्होंने तपस्या की।

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।

लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥

ये ऋषि मन्त्रद्रष्टा भी थे और मन्त्रकर्ता भी।

नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।

मा मा ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्राहुर्देवींवाचम् ॥

—तैत्तिरीयारण्यक ४.१.१

आप्त और ऋषि में अन्तर है। आप्त पुरुष भौतिक सत्त्यों को जानता है, ऋषि दैविक तथा अतीन्द्रिय विषयों का साक्षात्कार करता है—साक्षात्कृतधर्माणः ऋषियो बभूवुः। यह ज्ञान अनुमान से नहीं अपितु आर्षदृष्टि से हुआ, अतः इसे तर्क से काटा भी नहीं जा सकता।

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।

ये भावा वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥

### वक्तृलक्षण ऋषि

जो ज्ञान ऋषियों को ईश्वर से प्राप्त हुआ वह निर्विकल्प था। ऋषियों ने सविकल्प स्थिति में उसे शब्दों में अभिव्यक्त किया। अतः इन शब्दों के दृष्टा ऋषि ही हैं। यही बात वैशेषिक सूत्र

में कही गई है—बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे। दिव्य ज्ञान अपौरुषेय है, किन्तु वृत्यात्मक ज्ञान पौरुषेय है। श्रुति में वेद को नित्यावाक् और अनादिनिधना कहा गया है। अतः वाक् को अपौरुषेय मानना चाहिये। यह वाक् वस्तुतः मन, प्राण वाक् के अन्तर्गत नित्य वाक् है, न कि कानों से सुने जाने वाली वाक् है। यह नित्या वाक् सर्वव्यापक है इसलिये इसे वेद मन्त्रों के शब्द नहीं माना जा सकता। वाक् तीन प्रकार की है—ऋक्, यजुः, साम। सूर्य मण्डल ऋक् है, उसकी ज्वाला साम है, और पुरुष यजु है। इस प्रकार सूर्य मण्डल में त्रयी का संकेत हो रहा है। ये ऋक्, यजुः, साम यज्ञ से उत्पन्न हुए। ये तीनों वाक् स्वयम्भू की हैं।

सब पदार्थों की नाभि प्रजापति है। वाक् उस प्रजापति की निःश्वास है। उससे ही तीनों मण्डल बनते हैं—ऋक् यजुः और साम। प्रजापति के निश्वास का अर्थ यह है कि वह प्रजापति की इच्छा से उत्पन्न नहीं होता अपितु प्रजापति का परिचायक है। इसलिये वेदों को ब्रह्मा से उत्पन्न माना गया है। समस्त विश्व का केन्द्र सूर्य है। उससे उत्पन्न होने वाला वेद गायत्री मात्रिक वेद कहलाता है। ये वेद ईश्वर रूप हैं, ईश्वर का निश्वास है तथा ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं। जिसने इनका ज्ञान सर्वप्रथम प्राप्त किया वे ऋषि थे। वेद में अनेक प्रमाण हैं जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य विशेष ही ऋषि थे। उन ऋषियों से जिन मुनियों ने सुना, उनके स्मृति वाक्य भी प्रमाण हैं। यथार्थ पदार्थ का वर्णन करने वाला आप्त पुरुष होता है। अतीन्द्रिय, अनागत और अतीत के पदार्थ को जानने वाला ऋषि कहलाता है।

जब वेद का अर्थ ज्ञान होता है, तो वह ईश्वर रूप है। जब वेद का अर्थ वृत्यात्मक ज्ञान होता है तो वेद ईश्वर के द्वारा निर्मित कहलाते हैं। ऋषि जब उस ज्ञान को प्रकट करता है तो वेद ऋषि दृष्ट कहलायेंगे। इन ऋषियों के नाम वेद में भी दिये हैं। अर्थ यह हुआ कि अव्यय पुरुष की कला वाक् अपौरुषेय है, वह नित्य है। अव्यय पुरुष को ही ईश्वर कहा जाता है। क्षर पुरुष की कलाओं के विस्तार से सूर्य-मण्डल रूप जो वेद है, वह ईश्वर निर्मित है।

ऋषि वक्ता को कहते हैं। जो ऋषि जिस ज्ञान का उपदेश देता है वह उसका वक्ता हो जाता है। मन्त्र पाँच प्रकार के हैं—भाववृत्त, देवस्तव, वक्त्रात्मस्तव, देवात्मस्तव और संवाद। भाववृत्तों में सृष्टि की उत्पत्ति बतलायी जाती है। देवस्तव में देवताओं की स्तुति रहती है। वक्त्रात्मस्तव वे मन्त्र हैं जिनमें वक्ता अपनी प्रशंसा करता है। संवादात्मक में दो का संवाद रहता है।

अभिप्राय यह है कि ऋषि प्रवर्तक हैं। जिस प्राण का जो दर्शन करता है वह उस ही प्राण के नाम से जान लिया जाता है। ये नाम यशोनाम हैं। सभी ऋषि अपने यशोनाम से जाने जाते हैं, किन्तु किसी किसी ऋषि का व्यक्तिगत नाम भी मिलता है जैसे भरद्वाज ऋषि का व्यक्तिगत नाम विदधी अथवा वितथी था।

## सप्तर्षियों की त्रयी ऋषियों से सृष्टि

ऋषियों में सात ऋषि सृष्टि प्रवर्तक हैं जो प्राण ऋषि हैं, सात ऋषि वेद के प्रवर्तक हैं तथा सात ही ऋषि गोत्र के प्रवर्तक हैं। सृष्टि प्रवर्तक ऋषि प्राण हैं। वे ये हैं—

१. मरीचिः २. अङ्गिरा ३. वसिष्ठः ४. पुलस्त्यः ५. पुलहः ६. क्रतुः । इन प्राणों को साक्षात्कार करने वाले ऋषि वेद प्रवर्तक ऋषि हैं । वे ये हैं—

१. वसिष्ठः २. अगस्त्यः ३. भृगुः ४. अङ्गिरा ५. अत्रिः ६. पुलहः ७. भरद्वाजः । जैसे सृष्टि के प्रवर्तक प्राण हैं, वैसे प्राणियों के प्रवर्तक ऋषि गोत्र प्रवर्तक कहलाते हैं । वे ये हैं—

१. भरद्वाजः २. कश्यपः ३. गौतमः ४. अत्रिः ५. विश्वामित्रः ६. जमदग्निः ७. वसिष्ठः ।

## ऋषि और सृष्टि विद्या

ऋषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति में इच्छा, श्रम और तप का सहारा लिया ।

ते यत् पुरास्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तः

श्रमेण तपसा अरिषन् तस्मात् ऋषयः

—शतपथ ६/१/११

इच्छा मन का व्यापार है जो ज्ञान प्रधान है । तप प्राण का व्यापार है जो क्रिया प्रधान है । श्रम वाक् का व्यापार है जो अर्थ प्रधान है । मन की इच्छा, प्राण का तप और वाक् का श्रम, सृष्टि कर्म में आवश्यक है । इच्छामय मन अव्यय की विकास भूमि है । यह सृष्टि कर्म का आलम्बन है, अधिष्ठान है । शब्दसृष्टि में इसे स्फोट कहा जाता है । तपोलक्षण क्रियामय प्राण अक्षर की विकास भूमि है जो शब्द सृष्टि में स्वर कहलाता है । यह सृष्टि का निमित्त कारण है । श्रम रूप वाक् तत्त्व क्षर की विकास भूमि है जिसे शब्द की सृष्टि में वर्ण कहा जाता है । यह सृष्टि का उपादान है । ये तीनों मिलकर मन के द्वारा रूप, प्राण के द्वारा कर्म, तथा वाक् के द्वारा नाम को जन्म देते हैं । मन आलम्बन है किन्तु गति शून्य है, वाक् भी गतिशून्य है । गति केवल प्राण में है अतः सृष्टि कर्म में प्राण ही मुख्य है । प्राण का कर्म तप है, तप का लक्षण है “एतद्भै तप इत्याहुर्द्यत् स्वं ददाति”, तप में आत्म समर्पण आवश्यक है । यही प्राण का व्यापार है । अतः ऋषि ही सृष्टि का मूल है ।

## छन्द

नाम रूप और कर्म वस्तु के स्वरूप हैं जिसे वस्तु का वयः कहा जाता है । वस्तु वयः है तो वस्तु का आकार वयोनाथ है । वयोनाथ ही छन्द है क्योंकि वही वयः को आच्छादित करता है । वस्तु का यह आकार दो प्रकार से देखा जा सकता है—आकार और वर्ण । वर्ण का अर्थ है लाल पीला आदि । आकार का अर्थ है गोल, लम्बा, चौकोर आदि । ये वर्ण और आकार छन्द से बनते हैं । आकार को त्वष्टा बनाता है इसलिये उसे देवताओं का रथकार कहा जाता है—*त्वष्टा वै रूपाणि विकरोति* । वर्ण को इन्द्र बनाता है ।

सूर्य के सात घोड़े कहे जाते हैं । ये सात घोड़े सात छन्द हैं—गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप, जगती । इन सातों छन्दों का सम्बन्ध खगोल से है । पृथ्वी के बीचों बीच जो भूमध्य रेखा है वह पृथ्वी की अन्य रेखाओं से मध्य में होने के कारण बड़ी है, इसलिये उस रेखा को बृहती कहा जाता है । भूमध्य रेखा पर सूर्य निरन्तर तपता है—*सूर्यो बृहतीमध्युदस्तपति* । आधा खगोल

इस रेखा के दक्षिण की ओर है, आधा खगोल उत्तर की ओर है। इसी के एक ओर १२, ८ और ४ के अंशों पर ३ वृत्त हैं। जिसमें दक्षिण भाग का सबसे अन्तिम वृत्त मकर वृत्त कहलाता है। उत्तर भाग में भी इसी प्रकार तीन वृत्त हैं, जिनमें सबसे अन्त का वृत्त कर्क वृत्त कहलाता है। मकर वृत्त का सम्बन्ध गायत्री छन्द से है और कर्क वृत्त का सम्बन्ध जगती छन्द से है। इनमें गायत्री सबसे छोटा है और जगती सबसे बड़ा है। गायत्री के एक पाद में ६ अक्षर होते हैं उष्णिक में ७, अनुष्टुप् में ८, बृहती में ९, पङ्क्ति में १०, त्रिष्टुप् में ११, और जगती में १२। ये छन्द ही पदार्थ का आकार निर्धारित करते हैं।

## छन्द से विविधता

छन्द को वयोनाथ कहा जाता है, पदार्थ को वय तथा इन दोनों के समूह को वयुन कहते हैं। छन्द भिन्न-भिन्न परिमाणों के कारण भिन्न-भिन्न पदार्थों को जन्म देता है। छन्दों की अनेकता के कारण ही देवताओं की अनेकता है। वस्तुस्थिति यह है कि परिमाण वस्तु के स्वरूप का निर्धारण करता है। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि अग्नि एक परिमाण में अन्न को पचाता है दूसरे परिमाण में उसे पकाता है तथा तीसरे परिमाण में उसे जलाकर उसे भस्म कर देता है।

## छन्द और वाक्

छन्द से छन्दित पदार्थ नाम, रूप और कर्म की समष्टि है। इन नाम, रूप एवं कर्म का मन, प्राण तथा वाक् से सम्बन्ध है। रूप का सम्बन्ध मन से है। हम जिस आकार के पदार्थ को देखते हैं, मन उसी आकार में परिणत होता है कर्म का प्राण से सम्बन्ध है तथा नाम का वाक् से सम्बन्ध है। वाक् के गर्भ में प्राण है प्राण के गर्भ में मन। इनमें से वाक् का परिमाण छन्द है—“*वाक्परिमाणं छन्दः*”।

छन्द जिसका परिमाण है, ऐसी वाक् पर समस्त विश्व टिका है—*वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे, वाचं गन्धर्वः पशवो मनुष्याः। वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी ॥ (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/८/४)* कायाग्नि की प्रेरणा से वायु चलित होता है। यदि यह प्रेरणा साधारण है तो वायु केवल उरःस्थल तक जाता है। यदि वेग अधिक है तो कण्ठ तक जाता है। यदि वेग और भी अधिक प्रबल है तो मस्तक तक जाता है इस प्रकार वाणी के तीन रूप हो जाते हैं मन्द, मध्य और तार। इन तीनों का सम्बन्ध क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती से है। प्रातःकाल अग्नि मन्द होता है इसलिये स्वर मन्द रहता है और उरः स्थानीय होता है। इसका छन्द गायत्री है। मध्याह्न में कण्ठस्थानीय मध्य स्वर रहता है। इस समय का अग्नि सावित्र ऐन्द्र कहलाता है। यह कण्ठ स्थानीय मध्य स्वर है। इसका सम्बन्ध त्रिष्टुप् से है और सायंकाल का अग्नि आदित्य अग्नि है यह तार स्वर वाला शिरःस्थानीय स्वर है। इसका सम्बन्ध जगती छन्द से है। गायत्री में ८, त्रिष्टुप् में ११ और जगती में १२ अक्षर रहते हैं। प्रातःकाल में गायत्री की, मध्याह्न में सावित्री की और सायंकाल में सरस्वती की उपासना की जाती है। इन तीनों का सम्बन्ध तीन वर्णों से है—*गायत्र्या ब्राह्मणं निरर्वतयत् त्रिष्टुभा राजन्यं, जगत्या वैश्यम् (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/८/४)*। ब्राह्मण प्रातःकालीन सूर्य के समान है, शान्त किन्तु वर्धमान। क्षत्रिय मध्याह्न के सूर्य के समान

प्रचण्ड है। वैश्य सायंकाल के सूर्य के समान है, नम्र किन्तु क्षयिष्णु। इसी आधार पर मनु ने आचमन के समय ब्राह्मण को उरःस्थल पर्यन्त, क्षत्रिय को कण्ठ पर्यन्त, वैश्य को मुख पर्यन्त, तथा शूद्र को ओष्ठ पर्यन्त जल के स्पर्श का विधान किया है।

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः।  
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥

—मनु २.६२

प्रातः अग्नि मन्द होती है इसलिये उस समय उच्च स्वर से नहीं बोलना चाहिए। मध्याह्न में मध्य स्वर से और सायंकाल में उच्च स्वर से बोलना चाहिए।

प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।  
मध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राहसंकूजितसन्निभेन ॥  
तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदाप्रयोज्यम्  
मयूर हंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरः स्थितेन

—पाणिनीयशिक्षा

### अर्थच्छन्द

गायत्री पृथ्वी का छन्द है पृथ्वी का देवता अग्नि है। अग्नि के आठ अवयव हैं—१. आपः, २. फेन, ३. मृत, ४. सिकता, ५. शर्करा, ६. अश्मा, ७. अयः, ८. हिरण्य। अभिप्राय यह है कि छन्द का सम्बन्ध शब्द से भी है और पदार्थ से भी। शब्द से शब्दच्छन्द जुड़ा है, अर्थ से अर्थच्छन्द। शब्द और अर्थ के इस पारस्परिक सम्बन्ध को देखकर ही महाभारत में गायत्री के २४ अक्षरों के लिये २४ पदार्थ गिनाये हैं।

सिंहा व्याघ्रा वराहश्च महिषा वारणास्तथा।  
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्तारण्याः स्मृता नृप ॥  
गौरजाविर्मनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः।  
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः ॥  
एते वै पशवो राजन् ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश।  
वेदोक्ताः पृथिवीपाल ! येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥  
उद्भिजाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः।  
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥  
तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु।  
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्पता ॥  
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्।  
तत्त्वेन भारतश्रेष्ठ ! स लोके न प्रणश्यति ॥

—महाभारत



इन २४ पदार्थों में १४ ससंज्ञ हैं—७ आरण्यक और ७ ग्राम्य । वृक्ष, लता, गुल्म, वल्ली, त्वक्सार ये पाँच अन्तःसंज्ञ हैं तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच असंज्ञ हैं ।

## छन्द और अध्यात्म

आधिभौतिक अर्थ में अग्नि के ८ रूप हैं तो आध्यात्मिक रूप में भी अग्नि के ८ ही रूप हैं । ऋग्वेद से लेकर मल द्वारा तक ४ भागों में विभक्त शरीर के मध्य भाग को आत्मा कहा जाता है । बायीं ओर हाथ और पाँव एक पक्ष है दायीं ओर का दूसरा पक्ष । इस प्रकार दो पक्ष होते हैं । एक त्रिकास्थि में रहने वाला है पुच्छ है और आठवाँ सिर है । इस प्रकार अध्यात्म में भी गायत्री को घटाया जा सकता है । ये अवयव ८ प्राण हैं एक प्राण, प्रादेश मात्रा है—*प्रादेशमितः प्राणः* ।

एक प्रादेश साढ़े दस अंगुल का है । इस प्रकार मनुष्य  $१० \frac{१}{२} \times ८$  अर्थात् ८४ अंगुल का होता है । गायत्री छन्द से हमारा निर्माण हुआ है । इसलिये हम सब ८४ अंगुल के हैं । इस प्रकार गायत्री छन्द अध्यात्म का आधिभौतिक से सम्बन्ध स्थापित करता है । पूर्वोक्त—आपः फेन मृत सिकता शर्करा अश्मा अयः तथा हिरण्य—ये आठ अवयव आधिभौतिक के हैं तथा आत्मा आदि ८ अवयव अध्यात्म के हैं । इस प्रकार संख्या की समानता के आधार पर छन्द अध्यात्म, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों को एक सूत्रता में स्थापित करता है । यदि छन्द में किसी प्रकार का दोष आ जाये तो फिर अपने अनुरूप से सम्बन्ध न जुड़ने के कारण इष्ट फल नहीं अपितु अनिष्ट फल होता है ।

## चार लोक के चार छन्द

पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्यौः तीन लोक तो प्रसिद्ध है ही, चौथा भी लोक है—*अस्ति वै चतुर्थो देवलोक आपः* । इन चार लोकों के चार ही देवता हैं—अग्नि, वायु, आदित्य और चन्द्रमा । इन चार लोकों और चार देवताओं का चार छन्दों से सम्बन्ध है । अग्नि देवता तथा पृथ्वी का सम्बन्ध माछन्द से, वायुदेवता तथा अन्तरिक्ष का प्रमा से, सूर्यदेवता तथा द्यौः का प्रतिमा से तथा सोमदेवता एवं दिशाओं का सम्बन्ध अस्त्रीवि से है । १. *माछन्दः तत् पृथिवी, अग्निर्देवता*, २. *प्रमाछन्दः तदन्तरिक्षम्, वातोदेवता*, ३. *प्रतिमाछन्दः तद् द्यौः सूर्यो देवता*, ४. *अस्त्रीविछन्दः तद् दिशः, सोमोदेवता आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १६/२८/१* । यहाँ मा का अर्थ संख्या परिच्छेद, प्रमा का अर्थ वस्तु का आयतन वस्तु प्रतिष्ठा तथा प्रतिमा का अर्थ सादृश्य है । किसी भी वस्तु के निर्माण में संख्या, संख्या का क्रम तथा प्रतिमान अर्थात् मॉडल चाहिये । छन्द ये तीनों देता है ।

## तीन छन्द

ऊपर हमने वयः और वयोनाथ की चर्चा की । ऋक् और साम वयोनाथ है अर्थात् छन्द हैं और यजु छन्द से छन्दित वस्तु अर्थात् वयः है । वस्तुरूप यजु के ही दो भाग हैं यत् अर्थात् वायु और जू अर्थात् आकाश । वायु गति रूप है तथा आकाश स्थिति रूप । वयोनाथ छन्द रूप है, जो आभ्यन्तर व्यक्तित्व है । वयः नामरूपकर्ममय है जो बाह्य व्यक्तित्व है । सभी यज्ञ त्रिवृत होते हैं ।

इसीलिये यज्ञ विद्या त्रयी कहलाती है। छन्द की दृष्टि से भी यज्ञ त्रिवृत है। ये तीन छन्द हैं—गायत्री, त्रिष्टुभ् और जगती।

### सात छन्द

कर्क रेखा और मकर रेखा के बीच ही सब छन्द आते हैं। उत्तरी भाग में जगती, त्रिष्टुभ् और पङ्क्ति है, दक्षिणी गोलार्द्ध में गायत्री, उष्णिक, और अनुष्टुप् है। जगती, त्रिष्टुप् और पङ्क्ति में १२, ११ और १० अक्षर हैं, गायत्री उष्णिक और अनुष्टुप् में ६, ७ और ८ अक्षर हैं। यदि उत्तरी गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध के छन्दों के अक्षरों को जोड़ें तो प्रत्येक की संख्या १८ होगी। बृहती के ९ अक्षर होते हैं अर्थात् २ बृहती छन्दों को मिलाकर भी संख्या १८ ही होती है गायत्री ६ + जगती १२ = १८, उष्णिक ७ + त्रिष्टुप् ११ = १८, अनुष्टुप् ८ + पङ्क्ति १० = १८ इस प्रकार सभी छन्दों का समावेश बृहती में हो जाता है। बृहती वाव छन्दसां स्वराट्—ता. ब्रा. १०/३/८।

बृहती के ९ अक्षर हैं ४ पादों में मिलाकर ३६ अक्षर हो जाते हैं। यही ३६ अक्षर सूर्य के सम्पर्क से ३६००० (छत्तीस हजार) होकर ३६००० हजार दिन अर्थात् १०० वर्ष की आयु का निर्माण करते हैं—तद्वा इदं बृहतीसहस्र सम्पन्नम्। तस्य वा एतस्य बृहती सहस्रस्य सम्पन्नस्य षट्त्रिंशत्तमक्षराणां सहस्राणि भवन्ति। तावन्ति पुरुषायुषोऽहनां सहस्राणि भवन्ति। जीवाक्षरेणैव जीवाहरान्नोति, जीवाह्वा जीवाक्षरम्।

इन छन्दों का सम्बन्ध युग्म स्तोमों से है। अयुग्म स्तोम से ३३ अहर्गण बनते हैं युग्म स्तोमों से छन्द। गायत्री के २४, त्रिष्टुप् के ४४ और जगती के ४८ अक्षर होते हैं। यही तीन युग्म स्तोम हैं।

### छन्द और देव

ऊपर हमने ४ प्रकार के छन्दों का उल्लेख किया, तथा यह बताया कि वे ही चारों छन्द वैज्ञानिक परिभाषा में पूर्वोक्त मा, प्रमा, प्रतिमा, अस्त्रीवि नाम से व्यवहृत होते हैं। पृथिवीलोक का, एवं तद्रत पार्थिव पदार्थों का सामान्य छन्द “मा” है। अन्तरिक्षलोक, एवं तद्रत आन्तरिक्ष पदार्थों का सामान्य छन्द “प्रमा” नाम से प्रसिद्ध है। द्युलोक, एवं तद्रत दिव्य पदार्थों का छन्द “प्रतिमा” है। एवं आपोगत दिक्स्वरूप सम्पादक छन्द “अस्त्रीवि” नाम से प्रसिद्ध है। याज्ञिक परिभाषानुसार मा, प्रमा, प्रतिमा, अस्त्रीवि, ही क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् नाम से व्यवहृत होते हैं। गायत्री पार्थिव छन्द है। त्रिष्टुप् आन्तरिक्ष छन्द है। जगती दिव्य छन्द है। एवं अनुष्टुप् आप्यछन्द है। पृथिवीलोक “अग्निभूस्थानः” के अनुसार आग्नेय है। अतएव अग्नि गायत्रीछन्दा कहा जाता है। वायुवेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः—निरुक्त के अनुसार अन्तरिक्ष में मरुत्वान् इन्द्र की सत्ता मानी जाती है। अतएव इन्द्र को त्रिष्टुप्छन्दा माना जाता है। सूर्य्य सार्वदैवत्य होता हुआ विश्वदेव है। अतएव विश्वदेव को जगतीछन्दा माना जाता है। प्राजापत्यविवर्त को आस्त्रीविच्छन्दा माना जाता है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् चारों ही छन्दस्थाग्नि हैं। इन्हीं चारों आयतनों में क्रमशः अग्निमय

वसु, वायुमय रुद्र, आदित्यमय विश्वेदेव, तथा आपोमय आप्त्यादेवता प्रतिष्ठित रहते हैं। सम्पूर्ण देवता इन्हीं चारों छन्दों पर प्रतिष्ठित रहते हैं।

अनुष्टुप् प्रजापत्य अग्नि का छन्द है अतएव इसे श्रेष्ठ माना जाता है—ज्येष्ठं वा अनुष्टुप् ता. ब्रा. ८/७/३। त्रिष्टुप् छन्द पश्चिम दिग् में व्याप्त है। गायत्री छन्द मकर वृत्त से जुड़ा है इमनिये दक्षिण दिग् में व्याप्त है। जगती छन्द कर्क वृत्त से जुड़ा है। यह उत्तर में व्याप्त है। अनुष्टुप् प्राची से जुड़ा है। शेष तीनों छन्द अनुष्टुप् के ही विकास हैं।

वयः ऋतु देवता है। वह वस्तु है। ऋतु को प्रयाज कहते हैं। वयोनाथ छन्दोदेवता है। यह अनुयाज कहलाता है।

वाक् के सात छन्द हैं। पृथ्वी के त्रिवृत् पृष्ठ तक अर्थात् नौ अहर्गण तक गायत्री छन्द है, पञ्चदश तक त्रिष्टुप् छन्द है, एकविंश तक जगती छन्द है। इन्हीं में उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती और पङ्क्ति ये चार छन्द और हैं। इस प्रकार सात छन्द हो जाते हैं। इक्कीस के ऊपर रहने वाला सोम इन सात छन्दों में विभक्त रहता है। सातों छन्दों का स्वरूप पृथक्-पृथक् है, सातों का प्राण भिन्न-भिन्न है। एक ही सोम सात भागों में विभक्त हो जाता है।

### छन्दों की अक्षर सङ्ख्या

एक अक्षर से पाँच अक्षर तक का छन्द पथ्या छन्द कहलाता है। एक चरण में कम से कम एक और अधिक से अधिक पाँच अक्षर हो सकते हैं और इस प्रकार पथ्या छन्द में अधिक से अधिक बीस अक्षर हो सकते हैं। छः अक्षर से बारह अक्षर तक का छन्द देवछन्द कहलाता है,  $6 \times 4 = 24$  अक्षरों का छन्द गायत्री है,  $7 \times 4 = 28$  अक्षरों का छन्द उष्णिक् है,  $8 \times 4 = 32$  अक्षरों का छन्द अनुष्टुप् है।  $9 \times 4 = 36$  अक्षरों का छन्द बृहती है,  $10 \times 4 = 40$  अक्षरों का छन्द पङ्क्ति है,  $11 \times 4 = 44$  अक्षरों का छन्द त्रिष्टुप् है,  $12 \times 4 = 48$  अक्षरों का छन्द जगती है।

१३ से २४ अक्षर तक प्रति चरण वाला छन्द अतिछन्द कहलाता है तथा २५ या २५ से अधिक अक्षर प्रति चरण वाला छन्द दण्डक छन्द कहलाता है।

गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती तथा बृहती समेत सात छन्द हैं। यही देवच्छन्द कहलाते हैं "सप्त वै देवच्छन्दांसि"। ये सात ही अहोरात्र के निर्माण का कारण है। बृहती के उत्तर तथा दक्षिण में रहने वाले छन्दों का जोड़ ७२ होता है अर्थात् जगती और गायत्री के  $48 + 24 = 72$ , त्रिष्टुप् और उष्णिक् के  $44 + 28 = 72$ , पङ्क्ति और अनुष्टुप् के  $40 + 32 = 72$ ।

इस प्रकार ये ७२ व्यूहन से ७२० अहोरात्र बन जाते हैं। यही सम्बत्सर का रूप है। आठ वसुओं के सम्बन्ध से भी पृथिवी की गायत्री अष्टाक्षरा होती है। छन्दों में एक या दो अक्षर के न्यूनाधिक्य से अन्तर नहीं होता—*नैव एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्—एतेरेय ब्राह्मण*, १/६/२/३७।

क्योंकि छन्द वस्तु की सीमा निर्धारित करता है इसलिए दिशाओं को भी छन्द कह दिया जाता है। छन्दांसि वै दिशः(शतपथ, ८/३/१/१२) । दिशा वै परिभूश्छन्दः(यजु. सं., १५/४) ।

## छन्दों का कार्य

छन्दों में गायत्री तेज को बतलाता है, उष्णिक आयु को, अनुष्टुप् स्वर्ग को, बृहती श्री को, पङ्क्ति यज्ञ को, त्रिष्टुप् वीर्य को, जगती पशु को, विराट् अन्न को। इनमें जो जिस छन्द की उपासना करता है उसको वही पदार्थ मिल जाता है।

## पितृतत्त्व

वैदिक साहित्य की विवेचना करने वाले ग्रन्थों में ऋषि तथा देवताओं पर तो विचार किया जाता है किन्तु पितृतत्त्व का विवेचन प्रायः नहीं होता किन्तु मनु ने ऋषियों से पितरों की तथा पितरों से देवों की उत्पत्ति बतलाते हुए पितृतत्त्व को भी एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वीकार किया है। इसलिये पितरों पर भी विचार करना शास्त्रानुकूल होगा। पितर क्या है? यह विषय आज से अनेक वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने “संस्कृत रत्नाकर” में उठाया था। प्रश्न का समाधान कहीं से न मिलने पर उन्होंने पण्डित मोतीलालजी को इस विषय पर प्रकाश डालने के लिये कहा। फलस्वरूप पण्डित मोतीलालजी ने श्राद्ध विज्ञान नाम से चार खण्डों में एक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में वेद संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर पितरों का एवं श्राद्ध का विस्तृत विवेचन है। यह विवेचन श्राद्ध के मर्म को तो उद्घाटित करता ही है, एक ऐसी अन्तर्दृष्टि भी प्रदान करता है, जिसके आधार पर वर्तमान में चल रहा अनुसन्धान आगे बढ़ाया जा सकता है।

## पितर का अर्थ

पितर शब्द बहुत व्यापक है हम सामान्यतः जिन्हें पितर समझते हैं वे हमारे पूर्वज हैं। ये पितर (१) प्रेत पितर कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त (२) दिव्य पितर और (३) ऋतु पितर भी हैं। इन तीनों प्रकार के पितरों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम पितरों के स्वरूप को जानें। जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है, साहित्य में पितर शब्द के अनेकानेक अर्थ दिये हैं जिनमें मुख्य यह हैं—अग्नि, सोम, ऋतु, औषधि, यम, देव, प्राण, प्रजापति तथा अन्न। प्रश्न होता है कि एक ही शब्द के इतने विभिन्न अर्थ कैसे हो सकते हैं? और यदि एक ही शब्द के इतने भिन्न-भिन्न अर्थ किये जायें तो फिर पितर शब्द का स्वरूप भी कैसे निर्धारित किया जा सकेगा? वस्तुतः यह समस्या वेद के अनेक शब्दों के सम्बन्ध में है। ब्राह्मण ग्रन्थ एक शब्द के अनेकानेक अर्थ देते हैं। तब यह प्रश्न होता है कि उस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? क्योंकि यदि एक शब्द के बहुत सारे ऐसे अर्थ मान लिये जायें जिनका कोई पारस्परिक सम्बन्ध ही न हो तो फिर शब्द का अर्थ करना न करना बराबर हुआ, क्योंकि किसी भी शब्द का मनमाना कुछ भी अर्थ कर दिया जायेगा? ब्राह्मण ग्रन्थों की इसी प्रवृत्ति को देखकर पश्चिमी विद्वानों ने ब्राह्मण ग्रन्थों की उपेक्षा कर दी और यह घोषणा कर दी कि ब्राह्मण ग्रन्थ तो एक बीहड़ जंगल के समान हैं। वस्तुतः स्थिति यह है कि

वेद के वे सब शब्द जिनके ब्राह्मण ग्रन्थों में विभिन्न अर्थ दिये हैं प्राण के सूचक हैं। इसलिये उस शब्द का मुख्य अर्थ तो प्राण विशेष होता है। किन्तु वह प्राण जिस पदार्थ में रहता है, उस पदार्थ को भी उसी शब्द के द्वारा कह दिया जाता है। क्योंकि एक प्राण भिन्न-भिन्न पदार्थों में रहता है इसीलिये वे सभी पदार्थ उस प्राण के बताने वाले शब्द द्वारा कह दिये जाते हैं। बारम्बार यह कहने की अपेक्षा कि अग्नि जिसमें पितर प्राण रहता है, सोम जिसमें पितर प्राण रहता है, ऋतु जिसमें पितर प्राण रहता है इत्यादि, यह कह दिया जाता है कि अग्नि पितर है, सोम पितर है, ऋतु पितर है। वेदव्याख्या की इस शैली को समझ लेने के बाद ब्राह्मण ग्रन्थ बीहड़ जंगल नहीं रह जाते।

जब अग्नि को पितर कहा जा रहा है तो अभिप्रायः यह है कि अग्नि के पितर प्राण पर बल दिया जा रहा है। इसी प्रकार सोम को पितर कहते समय सोम में रहने वाले पितर प्राण को कहा जा रहा है। क्योंकि अग्नि अन्नाद है और सोम अन्न है। इसलिये अग्नि से जुड़ा हुआ पितर प्राण अन्नाद पितर है, सोम से जुड़ा हुआ पितर प्राण अन्न पितर है। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिए। वस्तुतः वेद-विज्ञान प्राण विज्ञान है और इसलिये उसमें प्राण की मुख्यता है और एक प्राण एक पदार्थ में ही नहीं रहता, बल्कि अनेक पदार्थों में रहता है। इसलिये उस प्राण के वाचक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते। पितर भी एक प्राण है जैसे देवता प्राण है। पितर प्राणों का सम्बन्ध सोम से है। इसलिये ऋग्वेद में कहा है पितर सोम्य है—*पितरः सोम्यासः*। पितरों का सम्बन्ध सोम से है, देवताओं का सम्बन्ध अग्नि से है। हम पहले कह चुके हैं कि स्वयम्भू में ऋषि प्राण रहता है। इस ऋषि प्राण से परमेष्ठी के आपः तत्त्व का विकास होता है। इस आपः के दो भाग हैं—भृगु और अङ्गिरा। भृगु स्नेह का वाचक है, अङ्गिरा तेज का। भृगु की भी तीन अवस्थाएँ हैं—अप, वायु और सोम। इनमें से अप तत्त्व के आधार पर असुर सृष्टि बनती है, सोम के आधार पर पितर सृष्टि का विकास होता है और वायु के आधार पर गन्धर्व सृष्टि का विकास होता है। अग्नि और सोम को सत्य और ऋत भी कहा जाता है। अग्नि सत्य है, सोम ऋत है। इस प्रकार पितरों का सम्बन्ध ऋत से जुड़ जाता है। देवताओं का सम्बन्ध सत्य से है। सत्य वह है जिसका केन्द्र है, ऋत वह है जिसका केन्द्र नहीं है। उदाहरणतः पाषाण का एक केन्द्र है इसलिये पाषाण के एक भाग को पकड़ कर यदि ऊपर उठाये तो पूरा पाषाण ऊपर उठता है। जल ऋत है। उसका केन्द्र नहीं है। इसलिये जल के एक भाग को ऊपर उठाने पर दूसरा भाग ऊपर नहीं उठता।

## खगोल में पितर

प्रसिद्ध है कि भीष्मपितामह अर्जुन द्वारा रणभूमि में धराशायी कर देने के बाद भी इसलिये शरीर छोड़ने को तैयार नहीं हुए कि उस समय दक्षिणायन चल रहा था। उत्तरायण आने पर ही उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। दक्षिणायन पितृलोक का द्वार है, उत्तरायण देवलोक का द्वार है। चन्द्रमा देवलोक और पितृलोक का विभाजन करने वाला है। चन्द्रमा के उत्तर में ध्रुव प्रदेश तक देवलोक है, उसके आगे ब्रह्म लोक है। चन्द्रमा के दक्षिण में शनिश्चर तक पितृ लोक है। उसके आगे नरक है। पितृ लोक को प्रद्यौ कहते हैं। देवलोक में प्रकाश ही प्रकाश है। असुर-लोक में अन्धकार ही अन्धकार है। पितृलोक इन दोनों की बीच की अवस्था है। इसमें सन्ध्या के समय की तरह

थोड़ा-थोड़ा प्रकाश और थोड़ा अन्धेरा रहता है ।

### पितरों के भेद

पितर दो प्रकार के हैं—अन्न पितर और अन्नाद पितर । जो पितर उष्ण पदार्थों से बने हैं उन्हें अग्निष्वाता कहा जाता है, शीत पदार्थों से बनने वाले पितर सोमसद् कहलाते हैं तथा वे पितर जो न शीत हैं, न उष्ण, बर्हिषत् कहलाते हैं । ये तीनों नाम सार्थक हैं क्योंकि अग्नि उष्ण होता है, सोम शीत और बहिः अर्थात् कुशा न ठण्डी होती है, न गर्म । पितृ लोक सोममय है क्योंकि पितर सोम-प्रधान है । सोम परमेष्ठी तथा चन्द्रमा दोनों में रहता है । परमेष्ठी का सोम ब्रह्मणस्पति कहलाता है । वह परमेष्ठी का अधिष्ठाता है । चन्द्रमा का सोम भास्वर सोम कहलाता है । वह मन का अधिष्ठाता है ।

देव प्राण प्राणदपानत् है । पितर प्राण केवल अपानत् है । अभिप्राय यह है कि देवों का सम्बन्ध अग्नि से है । अग्नि विकासशील है इसलिये उसमें गति और आगति दोनों रहती हैं । पितृ प्राण में सोम मुख्य है । सोम का स्वभाव संकोच है और संकोच में केवल गति ही रहती है । इसलिये पितरों में केवल अपानत्-व्यापार होता है । पितरों के अनेक प्रकार हैं, जिनमें तीन मुख्य हैं—नान्दीमुख, पार्वण और अश्रुमुख । नान्दीमुख पितरों का सम्बन्ध द्यौ से है, पार्वण का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से है और अश्रुमुख का सम्बन्ध पृथ्वी से है । देवताओं को जो आहुति दी जाती है वह स्वाहा कहलाती है । पितरों को दी जाने वाली आहुति स्वधा है । स्वाहा का सम्बन्ध बहिर्याग से है, स्वधा का सम्बन्ध अन्तर्याग से है । पितर एक यौगिक तत्त्व है । इस यौगिक तत्त्व का ब्रह्म मौलिक तत्त्व है । यह मौलिक तत्त्व ही यौगिक तत्त्व की प्रतिष्ठा है ।

### देव, पितर, ऋषि

देव और पितरों में हमने ऊपर यह भेद बताया कि पितरों का सम्बन्ध सोम से है, देवों का सम्बन्ध अग्नि से है । अग्नि को तेज और सोम को स्नेह भी कहा जा सकता है । इसी स्नेह और तेज के संयोग से सृष्टि बनी है । स्नेह का दूसरा नाम भृगु और तेज का दूसरा नाम अग्नि है । अग्नि और सोम एक साथ दो स्थितियों को बताते हैं । अग्नि-सोम गति-स्थिति का नाम भी है । अग्नि-सोम तेज-स्नेह का नाम भी है । जब वे गति स्थिति के बोधक होते हैं तो यजुः कहलाते हैं, जिसमें यत् का सम्बन्ध गति से और स्थिति का सम्बन्ध जू से है । गति वायु है स्थिति आकाश है । इन दो का समन्वय ही यजुः है । इधर तेज के रूप में अग्नि अङ्गिरा है और स्नेह के रूप में सोम भृगु है । भृगु और अङ्गिरा का समन्वय ही आपः है । यह अप् ही अथर्ववेद है, जिसे सुब्रह्म कहा जाता है । गोपथ ब्राह्मण ने इसमें अप् की प्रधानता देखकर सुवेद अर्थात् स्वेद कहा है । स्वयम्भू का प्राण तत्त्व असङ्ग है । असङ्ग से सृष्टि नहीं होती । परमेष्ठी का आपः तत्त्व भृगु और अङ्गिरा की मैथुनी सृष्टि से युक्त है । अतः यहीं से सृष्टि का प्रारम्भ होता है । अथर्ववेद में परमेष्ठी के इस आपः तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है आपः भृगु तथा अङ्गिरा रूप है, भृगु तथा अङ्गिरामय है, भृगु तथा अङ्गिरा के बीच ही तीन वेद आश्रित हैं—

आपो भृग्वङ्गिरोरूपामापो भृग्वङ्गिरोमयम् ।  
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः ॥

कौपीतिकि ने. भृगु और अङ्गिरा को ही इस रूप में कहा है—द्वयं वा इदं सर्वं स्नेहश्चैव तेजश्च ।

उपर्युक्त भृगु और अङ्गिरा क्रमशः पितर और देवों के आधार है। यजु का वाक् भाग भार्गव प्राण का जनक है। प्राण भाग अङ्गिरस प्राण का प्रवर्तक है। भृगु से सम्बद्ध होने के कारण पितर सोम्य हैं, अग्नि से जुड़े हुए देव आग्नेय हैं। प्राण प्रधान अग्नि देव-सृष्टि का कारण है वाक् प्रधान सोम पितृ-सृष्टि का कारण है। प्राण मन के निकट है, वाक् मन से दूर है। इसलिये देवता मन पर टिके हैं, पितर वाक् पर टिके हैं—पितरो वाक्यमिच्छन्ति भावमिच्छन्ति देवताः।

भृगु की घन, तरल और विरल तीन अवस्थाएँ हैं, जिन्हें क्रमशः आपः, वायु, सोम कहा जाता है। अङ्गिरा की तीन अवस्थाएँ अग्नि, यम और आदित्य हैं। आप्य प्राण ९९ हैं जो असुर हैं; वायव्य प्राण २७ हैं जो गन्धर्व हैं, सोम्य प्राण ८ हैं जो पितर हैं। सोम्य प्राण पर असुर प्राणों का आक्रमण होता है तो वायव्य प्राण उसकी रक्षा करते हैं। जहाँ वायव्य प्राण रक्षा नहीं करते हैं वहाँ आप्य प्राण वरुण प्रवेश कर जाता है और पदार्थ गलने लगता है। वायु पदार्थ को सड़ने नहीं देता।

शरीर में जब तक श्वास प्रश्वास का सञ्चार है, शरीर का सोम रक्षित है। श्वास प्रश्वास के न रहने पर शरीर सड़ने लगता है।

### पितरों का कार्य

पितरों का विकास परमेष्ठी मण्डल से होता है ज्योति का विकास सूर्य में होता है। इसलिये पितरों को देवों का जनक बतलाया गया है। जिस प्रकार भृगु के तीन भाग अग्नि, वायु और सोम, असुर, गन्धर्व और पितरों के प्रवर्तक हैं, इसी प्रकार अङ्गिरा के अग्नि, यम और आदित्य क्रमशः वसु, रुद्र और आदित्य के प्रवर्तक हैं। भृगु के तीन भाग और अङ्गिरा के तीन भाग मिलकर षट्कल सुब्रह्म बनता है। यह स्त्री रूप है, क्योंकि सोम है। यही अथर्ववेद है। उधर त्रयी में ऋग्वेद उक्थच्छन्द है, सामवेद - पृष्ठच्छन्द है तथा यजुर्वेद का यत् प्राण है जो ऋषि तत्त्व का मूल है और जू वाक् है जो पितृ प्राण का प्रवर्तक है। ऋक्, साम और यजुः पुरुष है, जिसकी चार कलाएँ हैं। ये चतुष्कलपुरुष षट्कल सुब्रह्म स्त्री से मिलकर दशकल विराट् पुरुष बनता है, जो सृष्टि को जन्म देता है। हमारे शरीर के निर्माण में ऋषि, पितर और देवता तीनों का योगदान है। स्वयम्भू से ऋषि तत्त्व, परमेष्ठी से पितृतत्त्व और सूर्य से देवतत्त्व लेकर ही हम उत्पन्न होते हैं। इसलिये इन तीनों के प्रति हमारा ऋण है। ऋषि ऋण ब्रह्मचर्य द्वारा अर्थात् ज्ञान द्वारा, देवऋण यज्ञ द्वारा और पितृ ऋण पुत्रोत्पत्ति द्वारा चुकाया जाता है।—जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिः ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः । एष वा अनृणी यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी च ।

ध्यातव्य है कि यहाँ यद्यपि इन तीन ऋणों की बात ब्राह्मणों के लिये की गई है किन्तु यहाँ, ब्राह्मण शब्द से चारों ही वर्ण समझने चाहिए। क्योंकि सभी वर्ण ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं इसलिये

सभी ब्राह्मण हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात महाभारत में कही गई है।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वब्राह्ममिदं जगत् ।  
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥

### पर, मध्यम, अवर पितर

पितरों में सर्वप्रथम प्राकृतिक पितर आते हैं पितरों के सम्बन्ध में ऋग्वेद का कहना है कि ये तीन प्रकार के हैं—पर, मध्यम और अवर।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सौम्यासः ।  
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितसे हवेषु ॥

—ऋक् सं. १०/१५/१

पितरों को ऋतज्ञः कहा गया है क्योंकि पितरों का सम्बन्ध परमेष्ठी से है और परमेष्ठी का सम्बन्ध ऋत से है।

ऋतमेव परमेष्ठी ऋतं नात्येति किञ्चन ।  
ऋते समुद्र आहित ऋते भूमिरियमाश्रिता ॥

—तैत्तिरीय संहिता १/५/५/१

ऊपर ऋग्वेद की ऋचा में पितरों को प्राणप्रद बताया था। छान्दोग्य उपनिषद् का कहना है कि अन्न से मन, आपः से प्राण और तेज से वाक् का निर्माण होता है—*अन्नमयं हि सौम्यमनः आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्*। परमेष्ठितत्त्व अप् प्रधान है। यहीं पितर रहते हैं इसलिये वे प्राण देने वाले समझे जाते हैं।

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ के तीन देवता—अग्नि, वायु और आदित्य हैं। उसी प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ के तीन पितर भी अवर, मध्यम और पर कहलाते हैं। अवर प्रेत पितर हैं, मध्यम ऋतु पितर हैं, पर दिव्य पितर हैं। इनका ही नाम क्रमशः अश्रुमुख, पार्वण और नान्दीमुख है। पृथ्वी के पितर दुःख रूप होने के कारण अश्रुमुख कहलाते हैं, द्यौ के पितर आनन्द रूप होने के कारण नान्दीमुख कहलाते हैं और इन दोनों के बीच में स्थित होने के कारण अन्तरिक्ष के पितर पार्वण पितर कहलाते हैं। इन तीनों पितरों से अग्नि, वायु और आदित्य देवता उत्पन्न होते हैं।

पितरों का सम्बन्ध सोम से है। सोम की तीन अवस्थाएँ हैं—आपः, वायु और सोम। इन तीनों का सम्बन्ध प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सांयसवन से है। आपः का सम्बन्ध अग्नि से, वायु का यम से और सोम का आदित्य से है। अग्नि और आपः के सहयोग से पृथ्वी उत्पन्न होती है। वायु और यम के सम्बन्ध से जल उत्पन्न होता है। यम रुद्र है जो विनाश का देवता है। वायु शिव है जो जन्म का देवता है। आदित्य और सोम के सम्बन्ध से द्युलोक में ज्योति उत्पन्न होती है। इस प्रकार आपः—अग्नि, वायु-यम तथा सोम-आदित्य ये तीन दम्पती हैं, जो तीन लोकों को जन्म देते हैं।